P. Nittya Nand Chaturvedi

*( Birthday 15-4-1868. )*

अपने सद्‌चरित्र और सत्यनिष्ठ पिता 'श्री पांडे शालग्राम जी'
द्वारा मुझको अपने जीवन में अधिक सुख शान्ति प्राप्त हुई--
इसलिये मैं इस पुस्तकके द्वारा उनके ही भावों को प्रकट
करने के प्रति आप के सन्मुख खड़ा हुआ हूँ।

# प्रस्तावना

संसार में मनुष्य जाति की अवस्था जो इस समय पाई जाती है, क्रम क्रम से उन्नत हुई है। छह सहस्र वर्ष पूर्व तक किसी जाति की रहन-सहन उत्तम प्रकार की न थी। उस समय तक किसी देश में बड़े बड़े नग्र व ग्राम न बसे थे। और व्यापार व कला कौशल के क्षेत्र में किसी जाति का पग आगे न बढ़ा था। जातियां अधिक अन्शं तक जङ्गलों व पर्वतों में निवास करती थीं। अहार के प्रति जङ्गली वृक्षों के फल फूल खातीं और आखेट करके जीवों का मांस भक्षण करतीं थीं। प्रथम समय में जिस जाति के हृदय में अपनी उन्नति का भाव उत्पन्न हुआ और जिसके द्वारा अन्य जातियों को भी शिक्षा सभ्यता प्राप्त हुई। यही जाति है जो भारत वर्ष में आकर बसी और आर्य जाति के नाम से प्रसिद्ध हुई, तथा इस समय में हिन्दू जाति के नाम से व्यक्त की जाती और अत्यन्त निर्बल व पराधीन अवस्था में पाई जाती है। हमारा जीवन भी इसी जाति का जीवन है और इसी जाति के रक्त का शेष मात्र है। इस लिये हमको इसके विगत जीवन तथा प्रस्तुत अवस्था पर

ध्यान देना नितान्त आवश्यक है। क्योंकि संसार की अवस्था इस समय विशेष प्रकार की है। अधिकांश जातियां अधिक ऊंची अवस्था को प्राप्त हो चुकीं और हर प्रकार की उन्नति कर चुकीं हैं। उनके मध्य विज्ञान बल अधिक है। बुद्धि बल अधिक है। सैनिक बल अधिक है। वे बड़े २ साम्राज्यकी अधिकारी हैं, और अपने व्यापार व कला कौशल के विस्तृत बनाने का अधिक प्रयत्न कर रही हैं। इसी उद्देश्य से उनके द्वारा संसार में रेल, तार, जहाज व आकाश में उड़ने वाले विमानों के आविष्कार हुये हैं तथा सब काम यन्त्रों द्वारा किये जाते और सहस्रों घोड़ों की शक्ति वाले इंजन काम में लाये जाते हैं। जातियों के मध्य प्रतियोगिता का भाव तीव्र गति से उत्पन्न हो गया है। प्रत्येक जाति अन्य जातियों की अपेक्षा, अपना बल बढ़ाना ही अपना जीवन समझती है। और बल का अर्थ वैज्ञानिक बल माना जाता है इसी कारण इस युग में संसार के मध्य विज्ञान की अधिक उन्नति हुई है और इसी के फलस्वरूप सैनिक अस्त्र शस्त्रों की भीषणता भी अधिक बढ़ गई है। मशीन गनों से ओलों के समान गोलियों की वर्षा की जाती है। भयंकर तोपों द्वारा चालीस चालीस मन भारी गोले चालीस चालीस मील की दूरी तक फेंके जाते हैं। जलमग्न ( Submarine ) तोपों के द्वारा बड़े बड़े सैनिक जहाज नष्ट किये जाते हैं। वायुयानों द्वारा आकाश से भी अग्नि की वर्षा की जाती है। और विषैली गैसों(Gases) के

द्वारा मीलों की दूरी तक शत्रु की सेना मूर्च्छित की जाती है। इस युग में नये २ अविष्कारों के द्वारा औद्योगिक तथा सैनिक बल का बढ़ाना और नये नये बन्दरों, बाजारों का खोज करके व्यापार की वृद्धि करनाही जातियों का परम ध्येय है—यही धर्म है, और इसी का नाम उन्नति है। इसी ध्येय के प्रति सैनिक बल का प्रयोग किया जाता है और सम्पूर्ण जनता को सैनिक शिक्षा दीजाती है। उस पर बड़े २ कर लगाये जाते हैं किसी जाति के लिये इससे प्रथक रहना और धन वा विज्ञान की उन्नति न करना इस युग में घोर पातक है। नरक का जीवन माना जाता है एकसौ वर्ष पूर्व तक सैनिक बल का प्रयोजन केवल देशाधिकार का प्राप्त करना था, परन्तु इस समय में व्यापारिक तथा व्यवसायिक अधिकारों का प्राप्त करना है। इसी लाभ के प्रति अधिक व्यय कियाजाता है और इसीको जातिका बल मानाजाताहै। उपयोगी वस्तुओं के प्राप्ति के लिये भूमिका का उदर चीरा जाता है। महासागरों की तली का खोज किया जाता है और प्राणों की बाजी लगाकर बत्तीस सहस्र फीट ऊंची एवेरेस्ट (Averest) पर्वत की चोटी तथा उत्तरी ध्रुव पर बारम्बार आक्रमण कियाजाता है। उन्नति की घोर ध्वनि से इस समय में मृतप्राय जातियां भी जीवित होउठी हैं और अपनी उन्नति के मार्ग का खोजकरती हैं। हमारी हिन्दू जाति भी यद्यपि इसी अवस्था में है और

अपनी निर्बल अवस्था का अनुभव कररही है परन्तु पर इसका अन्य सब जातियों के अपेक्षा अधिक पीछे है । अर्थात् ज्ञान हीन अधिक है, गुण हीन अधिक है, बुद्धि हीन अधिक है, इसी कारण पराधीन भी है, इसके मध्य ज्ञान का ह्रास इतना अधिक पाया जाता है कि इसकी ९९ निन्यानवे प्रतिशतसंख्या जो अशिक्षित वा अल्पशिक्षित अवस्था में है अपने स्वास्थ्य वा सामाजिक नियमों के उद्देश्य को भी नहीं समझती और अपनी हीन अवस्था का अनुभव नहीं करती, शुद्धताका प्रयोजन केवल मलिन वस्तुओं वा जातियों का न छूना मानाजाता है, स्वयं अपने ग्रह वस्त्र वा शरीर का स्वच्छ रखना नहीं । तथा धर्म का प्रयोजन केवल भजन पूजन माना जाता है, सत्य वा न्याय पूर्वक व्योहार करना नहीं । इसी प्रकार से अपने दुःख का कारण भी भाग्यहीनता मानाजाता है । अपनी अज्ञानता वा अकर्मण्यता नहीं । नैतिक पतनभी इसका इतना अधिकपाया जाताहै किमजदूरी और काश्तकारीसेलेकरसाहूकारीतथा जमींदारी तक कोई कार्य व्यवहार इस प्रकार का नहींहै, जो न्याय पूर्वक किया जाता हो और जिसके मध्य अधिक लाभ के प्रति अनुचित प्रयत्न करना आवश्यक न समझा जाता हो । छुद्र से छुद्र लाभों के प्रति भी मिथ्या भाषण और अनुचित व्यवहार कियाजाता है और अभियोग अदालतों में इतने अधिक जाते हैं कि विस्तृत न्यायालयों के द्वारा भी निपटारा उनका अधिक

समय तक नहीं होता अर्थात जाति के पैत्रिक जीवन में शुद्ध जीवन और सत्य व्यवहार की जो विशेषता थी जिसके प्रति यूनानी, चीनी इत्यादि अन्य देशों के यात्री भी अधिक प्रशंसा कर गये हैं। आश्चर्यजनक अवनति को प्राप्त हो गई। और इस समय की विशेष शिक्षा सभ्यता द्वारा, भी पुनः उत्पन्न न हो सकी। यद्यपि इस समय की पश्चिमी शिक्षा संसारिक जीवन के प्रति अधिक उपयोगी है और अत्यन्त चतुर व कर्मशील बृटिश जातिके साथ सम्बन्ध भी इस जाति का अधिक समय तक रह चुका है तथापि इस के मध्य उत्तम गुणों का प्रादुर्भाव नहीं हुआ किन्तु उनके स्थान में पश्चिमी सभ्यता और पश्चिमी जातीयता का भाव उत्पन्न हुआ है। जिसके अनुसार अपनी सभ्यता वा जातीयता का मिटा देना और उसके स्थान में पश्चिमी रीति नीति का स्वीकार कर लेना उचित समझा जाता है। जाति के शिक्षित मनुष्य जो कानूनी कौन्सिलों में जाते अथवा जाति का नेतृत्व करते हैं। वे जाति की घृणित रहन-सहन पर इसकी अपर्याप्त शिक्षा पर तथा औद्योगिक न्यूनता पर किञ्चित ध्यान नहीं देते। अर्थात् वे देश के मध्य इस प्रकार की संस्थायें उत्पन्न नहीं करते वा कौंसिलों में इस प्रकार के बिल प्रस्तुत नहीं करते जिनके द्वारा शासन विभागों का सुधार हो, अनुचित कानून बदलें अदालतों की उलझनोंमें कमी हो, सन्तानों के स्वास्थ्य और चरित्र की उन्नति

हो. देश का व्यवसाय बढ़े और कला कौशल की वृद्धि होसके जिसकी इस समय अधिक आवश्यकता है किन्तु इसके स्थान में वे वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध आन्दोलन करते, अछूतों को सवर्ण जातियों के विरुद्ध भड़काते, मजदूरों को पूंजीपतियों के विरुद्ध खड़ा करते और स्त्रियोंको पुरुषोंके विरुद्ध उत्तेजित करतेहैं। तथा कौंसिलों में भी इसी प्रकार के बिल उपस्थित करते हैं, जिनके द्वारा गृह और समाज के मध्य केवल अशान्ति का वातावरण उत्पन्न होसक्ता है परन्तु आर्थिक वा नैतिक लाभ किसी प्रकार का प्राप्ति नहीं होसका पश्चिमी जातियों के मध्य जो प्रथायें उनके असभ्य कालसेही चली आतीहैं और जोहानिकारक भाव उनके मध्य धन सम्पत्ति के अधिक बढ़जाने पर उत्पन्न हुये हैं अपनी निर्धन अवस्था में ही उनका अनुकरण किया जाना उचित समझाजाताहै। यदि वास्तवमें अन्य जातियोंकाअनुकरण कियाजानाही उन्नति है और उन्नतिका प्राप्त होना इसी प्रकार सम्भव समझा जाताहै, अन्यथा नहीं, तो निस्सन्देह हिन्दू जाति का उन्नति होना अधिक दूर है। क्योंकि भारतवर्ष को योरोप बनाने के लिये अधिक समय की आवश्यक्ता है।

हिन्दू जाति के प्रति यह समझना कि इसकी सामाजिक प्रथायें वा वर्ण भेद ही इसकी अवनति के विशेष कारण हुये हैं और पश्चिमी जातियों के अनुकरण किये जाने से उनहीं के समान उन्नति प्राप्त होसक्ती है, अत्यन्त भ्रम है। क्योंकि

अवनति का कारण यदि इसकी सामाजिक प्रथायें होतीं तो इसके समकालीन जातियों की अथवा इसके पश्चात् उन्नति होनेवाली जातियो की अवनति कदापि न होती। जिनकी प्रथायें इसके समान न थीं और इस समय की जिन जातियों का अनुकरण कियाजाताहै भविष्य में उनका भी अवनत न होना सम्भव नहीं क्यो कि उन्नति अवस्था जातियों की विशेष अवस्था है। जो जाति के मध्य अत्यन्त उत्कर्ष के उत्पन्न हो जाने पर उसको प्राप्त होसकी है और आलस्य व प्रमाद के अधिक होजाने पर पुनः अवनत होजाती है। हिन्दू जाति की सामाजिक अवस्था जो अन्य जातियों के अपेक्षा अन्य प्रकार की है कारण इसका इसकी विचार हीनता नहीं जैसा कि इस समय इसके विरोधियोंके द्वारा माना जाता है, किन्तु हिन्दू जाति एक संस्कृत जाति है जिसने अपनी व्यवस्था के नियम आदि काल में ही निर्दिष्ट किये हैं जिस समय तक संसार की कोई जाति सभ्य अवस्था को प्राप्त नहीं हुईथी अन्य जातियां निकट समय तक साधारण अवस्था में रहीं इस कारण उनके मध्य जातीयता का जो भाव उत्पन्न हुआ वह अनेक जातियों के रक्त मिलजाने, संख्या अधिक बढ़जाने और धार्म्मिक व्यवस्था के आधीन होजाने के कारण केवल देश भेद के अनुसार मानाजासका, हिन्दू जातिके समान पूर्णरूपसे जातिभेद के अनुसार नहीं। यद्यपि इससमयमें क्रम २से प्रत्येक जातिकेमध्य

यही भाव बढ़ताजारहा है और गोरी जातियों के मध्य अधिक उन्नत होचुका है तथा जिस प्रकार से हिन्दू जाति के मध्य क्रम क्रम से अधिक समय में दृढ़ हुआ है उसी प्रकार से. अन्य जातियों में भी क्रम २ से जाति भेद का दृढ़ होजाना अधिक सम्भव है।

प्रत्येक जाति के लिये अपनी उत्पत्ति का जानना और अपने पूर्वजों की सभ्यता, योग्यता, वा उन्नत, अवनति, के इतिहास पर दृष्टि रखना अत्यन्त आवश्यक है। क्रिश्चियन, मोहमडन, जैन, सिक्ख, इत्यादि प्रत्येक सम्प्रदाय के शिक्षित वा अशिक्षित मनुष्य अपने पूर्वजों का ज्ञान रखते, धर्म दृष्टि से उनके इतिहास को सुनते और बड़े २ सम्मेलनों के द्वारा उनकी महिमा का प्रकाशन करते हैं। परन्तु हिन्दू जाति अपनी उत्पत्ति से, अपनी प्राचीन तम अवस्था से और अपनी उन्नति अवनति के समय अथवा कारणों से परिचित नहीं। इसके सन्मुख कोई पुस्तक इस प्रकार की नहीं है जिसके द्वारा साधारण मनुष्य भी अपनी जातिकी उत्पत्ति, उसकी धर्मनीति और सभ्यता, योग्यता इत्यादि का ज्ञान प्राप्त करसके। इस प्रकार की साधारण पुस्तकों के न होनेसे हिन्दूजातिकी अधिक हानिहै। क्योंकि अन्य जातियों की शिक्षा, सभ्यता का प्रभाव जो इस जाति पर पड़ा और जाति के बहु संख्यक मनुष्यों ने क्रिश्चियन वा इस्लाम धर्म को स्वीकार करलिया तथा इस समय में नवशिक्षित मनुष्यों के द्वारा अपनी जातीय रीति नीति का

जो अधिक विरोध किया जाता है, कारण इस का यही है, कि वे अपनी जाति के निर्माण करता पूर्वजों की योग्यता, विचार-शीलता वा उत्तम नीति के उद्देश्य पर ध्यान नहीं देते। वे उनको वा उस समय कोही असभ्य समझते और उनकी निर्माण कृत धर्मनीति को भी इसी दृष्टि से देखतेहैं। संसार की अनेकजातियां कृश्चियन वा इसलाम धर्म में इसी प्रकारसे परिवर्तित हुईं जिस प्रकार से इस समय में हिन्दू जाति पर पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव अधिक पाया जाता है और जाति क्रम २ से उसकी ओर आकृष्ट होती जाती है। मैं यद्यपि जाति की इस हानि का अनुभव करता हूँ परन्तु शक्ति इस प्रकार की नहीं रखता जिसके द्वारा जाति की इस प्रबल गति को स्थगित कर सकूं। मुझको संस्कृत साहित्य का ज्ञान नहीं, तथा भाषा पर भी पूर्ण अधिकार नहीं रखता, जिसके द्वारा अपने हार्दिक भावों को जाति के सम्मुख उत्तम प्रकारसे प्रकट करसकूँ। तथापि आशा करताहूँ कि जाति यदि अपनी विवेक बुद्धि से काम लेगी तो यह पुस्तक जाति की इस आवश्यक्ता को किसी न किसी अंश तक अवश्य पूरा करेगी।

इस पुस्तक के लिखे जाने का प्रयोजन हिन्दू जाति के महत्व का प्रकट करना नहीं, किन्तु इसकी उत्पत्ति योग्यता, सभ्यता और उन्नति, अवनति के वास्तविक स्वरूप का प्रकाशित करना है। इसलिये पुस्तक के मध्य केवल वेही विचार प्रकट किये गयेहैं

जो अपनी दृष्टि से सत्य प्रतीत होते हैं और जाति की उन्नति वा अवनति के विशेष कारण हुये हैं जिन पर ध्यान देना जाति के प्रति अत्यन्त आवश्यक है। विषय सूची इस पुस्तक की निम्न लिखित है।

(१) प्रस्तावना (२) भारतवर्ष की भौगोलिक स्थिति और इसके मध्य बसने वाली जातियां (३) आर्य जाति के समय और शासन कर्ताओं का विवरण (४) आर्य जातिका आदि स्थान और इसकी वैदिक शिक्षा सभ्यता (५) आर्य जाति का विस्तृत साहित्य (६) आर्यजाति का विज्ञान व कला कौशल (७) हिन्दुओं का जाति भेद (८) हिन्दू जाति की सामाजिक प्रथायें (९) सृष्टि की उत्पत्ति का भौतिक ज्ञान (१०) धर्म का मुख्य उद्देश्य (११) भविष्य के प्रति हिन्दू जाति की उचित नीति।

नोट—इस पुस्तक में जाति के प्रति आर्य तथा हिन्दू दोनों शब्द प्रयुक्त किये गये हैं और समय के लिये स्थानोचित विक्रमी वा ईसवी दोनों प्रकार के सन् लिखे गये हैं। परन्तु जिस स्थान पर सन् नहीं लिखा गया वहां सन् ईसवी मानाजावे।

पांडे नित्यानंद चतुर्वेदी,

" फर्रुखाबाद "

( यू० पी० )

## भारतवर्ष की भौगोलिक स्थिति और उसके मध्य बसने वाली जातियां।

हमारे इस देश का जातीय नाम आर्य्यावर्त वा भारतवर्ष है, परन्तु मुसलमानों के शासन-काल में हिन्द वा हिन्दोस्तान बोला गया और इस समय में बृटिश जाति के द्वारा इन्डिया बोला जाता है। यह देश अधिक बड़ा है। लम्बाई इसकी हिमालय पर्वत की आबादी से लेकर रासकुमारी तक लगभग दो सहस्र मील और चौड़ाई सिन्धु नदी से लेकर ब्रह्मदेश तक लगभग सोलह सौ मील है। क्षेत्रफल इसका लगभग अठारह लाख वर्ग मील है। जन-संख्या

सन १९३१ ई० की गणना अनुसार लगभग साढ़े पैंतीस करोड़ है जो वैदिक ( आर्य ) बौद्धिक, पौराणिक (सनातनी) मसीही, मुहम्दी, जैन, सिक्ख यह सात प्रकार के बड़े धर्म रखनी और प्रान्त भेदसे बाईस प्रकारकी भाषायें बोलतीहै । उत्तरी सीमाकी सम्पूर्ण चौड़ाई में हिमालय नाम का विशाल पर्वत खड़ा हुआहै जो पृथ्वी का सबसे बड़ा पर्वत है । शेष तीनों किनारे भी समुद्र और पर्वतोंसे घिरे हुए हैं जो शत्रुओंसे अधिक अंशतक देश की रक्षा करते हैं । मध्य में सतपुड़ा और विन्ध्याचल पर्वतों की श्रेणियां हैं जो दक्षिण के त्रिभुज को उत्तर भारत से पृथक करती हैं । यह पर्वत श्रेणियां अपने खनिज वा उद्भिज पदार्थों के द्वारा देश की अनेक आवश्यकताओं को पूरा करतीं और नाड़ियोंके समान अपने हृदय से अनेक नदियोंको बहाकर इसके सुख और समृद्धि का कारण होती है । दक्षिण का त्रिभुज भूमध्य रेखा के निकट है इस कारण किञ्चित ऊष्ण है और द्रवण ( Dravidian ) जातियां इसमें विशेष प्रकार से निवास करती हैं । उत्तरी भारत आर्य्यावर्त कहलाता है, जल, वायु यहां का सामान्य प्रकार का है और आर्य्य-जाति इसके मध्य अधिक संख्या में बसी हुयी है । तीसरे भाग में हिमालय पर्वत का जल वायु शीतल है और ग्रीष्म ऋतु के प्रति विशेष प्रकार से सुखप्रद है, इसी कारण अनेक जातियां आकर यहां बस गयीं । काले गोरे और पीले तीन रंग के मनुष्य जो पूर्वी

गोलार्ध में उत्पन्न होते हैं। कुछ २ अन्तर के साथ सबके उदाहरण यहां विद्यमान हैं अर्थात् उत्तर पूर्व के अधिकांश निवासी पीत वर्ण की मङ्गोल जाति से उत्तर पश्चिम वाले गोरी काकेशियन जाति से और दक्षिण-भारत के निवासी काले रंग वाली द्रवण ( Dravidian ) जाति से अधिक मिलते हैं। यद्यपि किसी न किसी अंश में प्रत्येक प्रकार के मनुष्य प्रत्येक विभाग में बसे हुये हैं। किसी खण्ड में पूर्ण रूप से एक ही प्रकार के मनुष्य निवास नहीं करते।

इस देश के उत्पन्न हुये अथवा आदिम् निवासी मनुष्य कौन हैं, इतिहास उनका प्राप्त नहीं। तथापि आर्य-जाति से प्रथम बसने वाले मनुष्य इस देश के आदिम् निवासी माने जाते हैं और खग्गर, गोंड, भील वा सन्थाल इत्यादि नामों से प्रसिद्ध हैं। सन्थाल लोग बङ्गाल, विहार, उड़ीसा और संयुक्त प्रान्त के मध्य जङ्गलों वा पहाड़ों में बसे हुये हैं। खग्गर पंजाब में, गोंड मध्य-प्रान्त में और भील बम्बई वा राजपूताना में विशेष प्रकार से बसे हुए हैं। यह लोग अधिक अंश तक असभ्य हैं और संख्या भी इनकी दक्षिण वाली द्रवण जाति को छोड़कर सम्पूर्ण देश के मध्य एक करोड़ से अधिक नहीं है।

दूसरे मङ्गोल जाति के मनुष्य ब्रह्मा, बङ्गाल, तिब्बत, नैपाल और पूर्व हिमालय के निकट बसे हुए हैं। इनके शरीर का ढांचा चीन निवासियों से अधिक मिलता है।

तीसरे आर्य्य-जाति के मनुष्य उत्तर भारत में विशेष प्रकार से निवास करते हैं। दक्षिण भारत में अधिक नहीं, यह लोग निकट पश्चिम से आकर इस देश में बसे हैं। विशेष प्रकार से वर्णन इनका अगले प्रकरण में किया जाता है।

चौथे द्रवण-जाति के मनुष्य जो इस देश के आदिम निवासी माने जाते हैं दक्षिण भारत में बसे हुए हैं। यह लोग धर्म के अनुसार यद्यपि हिन्दू हैं, परन्तु रङ्ग में काले और सभ्यता में उत्तरी हिन्दुओं से पृथक पाये जाते हैं। आर्य हिन्दू जो देशाधिकार के निमित्त वहां आकर बसे अपनी संस्कृत वा रक्त रक्षा के कारण इनसे पृथक रहते हैं। यह द्रवण जाति के मनुष्य अफ्रीका के निकट निवासियों से अधिक मिलते हैं। यह किस समय वा किस स्थान से चलकर यहां आये अथवा इसी देश के उत्पन्न हुये मनुष्य हैं, इतिहास इनका प्राप्त नहीं है। कुल संख्या इनकी देश के मध्य लगभग सात करोड़ के है। लगभग पांच करोड़ के केवल मदरास प्रान्त में हैं और चौदह प्रकार की भाषायें बोलते हैं। शेष बम्बई इत्यादि प्रान्त में हैं।

पांचवें प्रकार के लोग मुसलमान हैं जो अरब, सीरिया, ईरान, अफगानिस्तान, तुरकिस्तान इत्यादि देशों से यहाँ आठवीं शताब्दी से आना प्रारम्भ हुये और इस देश के बहुसंख्यक मनुष्यों को सम्मिलित करके इस समय तक लगभग आठ करोड़ के हो गये हैं। वृद्धि इनकी इस कारण अधिक पाई

जाती है कि आठ सौ वर्ष पर्यन्त मुसलमानों से लड़कर हिन्दू अधिक संख्या में मारे गये, कुछ मुसलमान बन गये। इस समय में मुसलमानों की संख्या सब देश की जन संख्या का प्रतिशत बाईस और केवल हिन्दुओं की संख्या का लगभग तृतीयांश के है। विवरण जिसका निम्नलिखित है।

ब्रह्मा और बिलोचिस्तान सहित अङ्गरेजी शासन काल की प्रथम जन संख्या जो सन् १८८० ई० में की गई चौदह करोड़ थी और अन्तिम जन संख्या जो सन् १९३१ ई० में हुई लगभग साढ़े पैंतीस करोड़ (३५२९८६८७६) है। इस जन संख्या में हिन्दू २३८३३०९२७। मुसलमान ७७७४३९२८। सिक्ख ४३०६४४२। ईसाई ५९६१७९४। बौद्ध १२७२४९०५। जैन ४०८५८७। पारसी २९५४३। यहूदी १९४४३। शेष आदिम निवासी तथा वे लोग हैं जिनका कोई धर्म नहीं या अत्यन्त न्यून संख्या में हैं। द्रवण जाति के आदिम निवासी हिन्दू धर्म के उपासक हैं।

छटी जाति के आर्य मनुष्य योरोप निवासी हैं, जो लगभग चार सौ वर्ष से इस देश में आना प्रारंभ हुये परंतु ऊष्ण जल वायु के कारण अधिक संख्या में नहीं बसे। आदि में व्यापार की दृष्टि से कुछ बस्तियां उनकी स्थापित हुई थीं। उनमें से गोवा, पुर्तगीजों के और चंद्रनगर फ्रान्सीसियों के अधिकार में इस समय तक बने हुये हैं। तथा मद्रास, बम्बई, कलकत्ता,

इत्यादि बड़े २ नग्रों में जो ईस्टेन्डिया कम्पनी के सदर मुकाम थे, कुछ कुछ आबादियां अङ्गरेजों की हैं। सम्पूर्ण देश के भीतर संख्या जिनकी स्त्री बच्चों समेत दो लाख से अधिक नहीं इस में लगभग साठ हजार (६००००) सेना में, चार हजार (४०००) पुलीस में, चौतीससौ (३४००) सिविल में और शेष व्यवसायिक कार्यों में लगे हुये हैं।

इस देश के मध्य लगभग साठ लक्ष के ईसाई हैं और वह इसी देश के निर्धन अशिक्षित और चतुर्थ वर्ण वाली जातियों की सन्तानें हैं, जो बहुधा अकाल और आपत्ति के समय में पादरियों के प्रयत्न से ईसाई बनगये। इस देश के हिन्दुओं को भी इसी प्रकार का प्रयत्न करना उचित है, क्योंकि हिन्दू धर्मानुयायों की संख्या संसार के मध्य बौद्ध, ईसाई, वा मुसलमानों की अपेक्षा अधिक न्यून है और हिन्दुओं का केवल यही देश है, जिसके मध्य अन्य धर्मावलम्बियों की संख्या क्रम क्रम से बढ़ती जारही है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि उक्त कोल, भील और द्रवण वा मङ्गोल जाति के मनुष्य किस समय वा किस स्थान से यहां आये कोई इतिहास उनका प्राप्त नहीं। परन्तु इस समय की उत्कट खोज और इतिहासों वा प्राचीन काल के लिखे ग्रन्थों द्वारा अधिक अंश तक ज्ञात होता है कि पांच सहस्र वर्ष पूर्व इस देश के मध्य बड़े २ नग्र वा ग्राम न थे। अनेक जातियां

जङ्गलों व पर्वतों पर निवास करती थीं खेती नहीं करती थीं केवल मवेशियों को पाल कर उनका दूध पीती व जीवों को मार कर उनका मांस खाती थीं तथा एक ही स्थान में अधिक समय तक न रह कर दूर २ तक जातीं और उत्तम स्थानों की प्राप्ति के लिये परस्पर युद्ध करती थीं। प्रथम जाति जिसका आना इस देश के भीतर ज्ञात होता है संसार की सब से अधिक बड़ी और श्रेष्ठ आर्य जाति है जो पांच सहस्र वर्ष पूर्व हिमालय की पश्चिमी सीमा से उतर कर इस देश में आई और देश को बसाया तथा उत्तम प्रकार के शासन ज्ञान विज्ञान व कला कौशल के द्वारा इसको सुव्यवस्थित किया। इसी कारण यह देश भारतवर्ष अर्थात् हिन्दू जाति का बोला तथा माना जाता है। जंगली जीवों के समान इससे प्रथम बसने वाली जातियों का अथवा धन सम्पत्तिके लालच से अधिक पश्चात में आनेवाली जातियोंका नहीं। इसी नीति के अनुसार संसार की अन्य जातियां भी किसी न किसी देश को अपना समझतीं और अपनी ही जाति के चुने हुये योग्य पुरुषों द्वारा शासन उसका स्वयम् करती हैं।

इस देश में आकर आर्य जाति ने आर्थिक दृष्टि से सम्पूर्ण जाति को चार भागों में विभक्त किया और प्रत्येक भाग को एक विशेष जाति वा वर्ण माना। अर्थात जो मनुष्य अपनी प्रकृति अनुसार ज्ञान की खोज में प्रवृत्ति हुये ब्राह्मण कहलाये और जाति रूपी शरीर के मध्य मस्तिष्क के समान

सर्वोत्तम माने गये। द्वितीय प्रकृति के मनुष्य जो अपने बाहु बल से जाति की रक्षा में प्रवृत्ति हुये क्षत्री कहलाये और देश प्रबन्ध के अधिकारी बने तथा जाति रूपी शरीर के मध्य भुजाओं के समान दूसरा स्थान उनको प्राप्त हुआ। तृतीय प्रकृति के मनुष्य जिन्होंने अपनी शक्तिको औद्योगिक कार्योंको ओर आकृष्ट किया वैश्य कहलाये और शरीर में उदर के समान जाति के पोषक माने गये तथा तीसरा स्थान उनको प्राप्त हुआ। चतुर्थ प्रकारके मनुष्य जो केवल परिश्रम बल रखते थे, श्रमकारी व शूद्र कहलाये और पाद शक्ति के समान प्रत्येक कार्य के संचालक माने गये इस कारण जाति रूपी शरीर के मध्य चौथा स्थान उनको प्राप्त हुआ। अधिक समय तक वर्ण भेद के बन्धन ढीले बने रहे अर्थात वर्ण भेद केवल कार्य भेद की ही दृष्टि से देखा जाता रहा और ब्राह्मण वा क्षत्रिय आदि का परस्पर खान पान वा रक्त सम्बन्ध भी स्थिर बना रहा परन्तु अनेक पीढ़ियों तक एक ही प्रकार का कार्य किये जाने से कार्य भेद अधिक दृढ़ होगया और बौद्ध धर्म के विरोध किये जानेसे लेकर इस्लाम धर्म के प्रचार होने तक विशेष प्रकार से दृढ़ हुआ इस नीति के फल स्वरूप कार्य भेद केवल जाति भेद तकही सीमित न रहा किन्तु रक्त भेद, आचार भेद, और स्थान भेदके कारण उत्तरोत्तर कालमें एकही प्रकार का व्यवसाय करने वाली जातियां भी अनेक भागों में विभक्त होगयी जो परस्पर

बिवाह वा खानपानादि का सम्बन्ध नहीं रखतीं। जाति भेद की यह नीति इस समय में जीवन अवस्था के प्रतिकूल होजाने से अधिकाँश मनुष्यों द्वारा नितान्त अनावश्यक तथा हानिकारक मानीजाती है। क्योंकि अत्यन्त द्रुतिगामी भूयानो, जलयानों और वायुयानों के अधिक प्रचार से भूगोल का क्षेत्र सङ्कीर्ण बनगया है और जातियों का कार्य क्षेत्र विस्तृत होगयाहै इसलिये इस देश के भी बहु संख्यक मनुष्य संसार का भ्रमण करते जहाजों द्वारा क्रिश्चियन देशों में दूर २ तक जाते और अत्यन्त उन्नति शील अथवा सभ्य देशों में इस प्रकार के जाति भेद को न पाकर इस नीति का अधिक विरोध करते हैं। तथा देश के अनेक नवयुवक जो गृह से दूर रहकर विद्यालयों में शिक्षा पाते वा नौकरी करते हैं वे गुप्त वा प्रगट रूपसे खान पान की इस नीति का पालन नहीं करते किन्तु इसके विरुद्ध आन्दोलन कररहे हैं इसलिये वास्तव में इस नीति के पालनकिये जाने से हानि वा लाभ किस प्रकार का है वर्णन इसका जाति भेद के प्रकरण में विशेष प्रकार से कियाजावेगा।

अगले प्रकरण में आर्य जाति की उत्पत्ति और उसके वंश वृक्ष का वर्णन कियाजाता है।

---

# आर्य-जाति का समय और उसके शासन कर्ता।

**आर्य-जाति का सूर्यवंश**

- सूर्य—सूर्यवंश का प्रथम पुरुष है
- मनु जी-शासन व्यवस्था के निर्माण कर्ता।
- इक्ष्वाकु—सूर्यवंश का प्रथमशासक

**आर्य-जाति का चन्द्रवंश**

- चन्द्र—चंद्रवंश का प्रथम पुरुष
- बुद्ध—मनु की पुत्री ईला इसको व्याही गई।
- पुरूरवा—चन्द्रवंशका प्रथमशासक
- आयु-पुरूरवा के आयु आदि छः पुत्र हुये जिन्होंने देश देशान्तरों में राज्य स्थापित किये
- नहुष-आयु का पुत्र
- ययात-

ययात चन्द्रवंशी—यदु और पुरु ययात के पुत्र नहीं किन्तु वंशज हैं क्योंकि पुरूरवा से पैंतालीस पीढ़ी पश्चात् युधिष्ठिर माने जाते हैं। जो ययात से पांच पीढ़ी परचात् उत्पन्न हुये।

**यदु**

- शूरसेन—यदु के पुत्र
- वसुदेव—शूरसेन के पुत्र
- श्रीकृष्ण-वसुदेव के पुत्र

**पुरु**

- शान्तनु—पुरु के पुत्र
- विचित्रवीर्य—शान्तनु के पुत्र

पाण्डु—विचित्रवीर्यके पुत्र — धृतराष्ट्र—विचित्रवीर्यकेपुत्र

- पाण्डु: युधिष्ठिर अर्जुन भीम नकुल सहदेव
- धृतराष्ट्र: दुर्योधन आदि सौ पुत्र

मनुजी के पुत्र (१) इक्ष्वाकु (२) नृग (३) शर्याति (४) दिष्ट (५) धृष्ट (६) करूपक (७) नरश्यंत (८) पृषध्रु (६) नभग (१०) कवि (११) पुत्री ईला, इन सबके द्वारा इस देश तथा अन्य देशों में राज्य स्थापित हुये और पुत्रों के वंशज सूर्य वंशी तथा पुत्री के वंशज चन्द्रवंशी कहलाये।

उक्त मनुजी के समय को लगभग पांच सहस्र वर्ष व्यतीत हुये जिनकी छियालीसवीं पीढ़ी में युधिष्ठिर उत्पन्न हुये माने जाते हैं और युधिष्ठिर से सरसठ पीढ़ी पश्चात् विक्रम परन्तु वैवस्वत नामी सातवें मन्वन्तर की इस समय में अट्ठाईसवीं चतुरयुगी व्यतीत हो रही है और एक चतुरयुगी का समय तेंतालीस लाख बीस हजार वर्ष होता है इसलिये मन्वन्तर का वैवस्वत मनु समय का बोधक है। पुरुष विशेष का नहीं और आर्य-जाति के राजा मनु शासन व्यवस्था के प्रथम व्यवस्थापक हैं।

आर्य-जाति के लेखकों ने महत्व के अभिप्राय से अपने ग्रन्थों में महापुरुषों की उत्पत्ति को अद्भुत प्रकार से वर्णन किया है यह वर्णनशैली प्राचीन काल की प्रथा थी, केवल आर्य जाति की ही विशेष नीति नहीं अन्य जातियों ने भी अपने विशेष पुरुषों की उत्पत्ति और जीवन लीला को अद्भुत प्रकार से ही वर्णन किया है और भाव इस विचार का आदि सृष्टि के विचार से उत्पन्न हुआ है।

प्राचीन काल में मनुष्यों और जातियों के नाम बहुध

गुणों और प्राकृतिक वस्तुओं के नामों द्वारा प्रगट किये गये हैं। इस कारण इस समय में बहु संख्यक मनुष्य उनको मनुष्य न समझ कर, ग्रह, जल वा पत्ती, बन्दर इत्यादि समझते हैं। इस प्रकार के असम्भव विचारों को अपने हृदय में स्थान देना उचित नहीं।

आर्य जाति अपने सूर्य सिद्धान्त नामी ज्योतिष ग्रन्थ के अनुसार इस वैवस्वत नामी सातवें मन्वन्तर के प्रारम्भ से जिसके समय को सन् १९३३ ई० तक बारह करोड़ पांच लाख तेंतीस हजार इक्कीस १२०५३३०२१ वर्ष व्यतीत हुये सृष्टि का सातवां मन्वन्तर वा महायुग मानती है क्योंकि प्रत्येक महा प्रलय के पश्चात सृष्टि के सम्पूर्ण समय को आर्य जाति ने एक कल्प वा चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष माना है और इस समय को १४ चौदह मन्वन्तरों में वा महायुगों में विभक्त किया है तथा प्रत्येक मन्वन्तर में एकहत्तर चतुर्युगी मानी गयी है जिनका समय सन्धि समेत तीस करोड़ चौरासी लाख अड़तालीस हजार ३०८४४८००० वर्ष होता है। इस समय में इस वैवस्वत नामी वर्तमान मन्वन्तर की अट्ठाइसवीं चतुर्युगी व्यतीत होरही है जिसका समय १२०५३३०२१ वर्ष ऊपर लिखा गया है इस लिये कल्प के प्रारम्भ से इस समय सन् १९३३ई० तक एक अरब सत्तानवे करोड़ उन्तीस लाख उनचास हजार तेंतीस १९७२९४९०३३ वर्ष व्यतीत हुये हैं और दो अरब चौंतीस

करोड़ सत्तर लाख पचास हज़ार नौसो सरसठ २३४७०५०९६७ वर्ष शेष रह गये हैं। एक चतुर्युगी का समय तेतालीस लाख बीस हज़ार वर्ष माना गया है जिसमें प्रथम सतयुग का समय १७२८००० सत्तरह लाख अठ्ठाईस हज़ार वर्ष, द्वतीय द्वापर का समय १२९६००० बारह लाख छयानवे हज़ार वर्ष तृतीय त्रेता का समय ८६४००० आठ लाख चौंसठ हज़ार वर्ष, चतुर्थ कलयुग का समय ४३२००० चार लाख बत्तीस हज़ार वर्ष माना जाता है। इस समय तक वर्तमान कलयुग के समय को ५०३३ पांच हज़ार तेंतीस वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। कल्प का समय ब्रह्मा का एक दिन माना गया है। इसके पश्चात् महा प्रलय हो जाता है और इतने ही समय तक सृष्टि के परमाणु प्रथक प्रथक रहते हैं अर्थात चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष तक ब्रह्मा की रात्रि मानी जाती है।

उक्त चौदह मन्वन्तरों के नाम यह है :—

(१) स्वम्भुव (२) स्वरोचिक (३) उत्तम (४) तामस (५) रैवत (६) चाक्षुक (७) वैवस्वत (८) सावरिणी (९) दक्षसावरिणी (१०) ब्रह्म साविरणी (११) धर्म सावरिणी (१२) रुद्र साविरणी (१३) देव सावरणी (१४) इन्द्र सावरणी—

आर्य जाति के आदि राजा इक्ष्वाक के शासन काल को जिन्होंने अयोध्या को राजधानी बना कर शासन इस देश का प्रारम्भ किया था, कितना समय व्यतीत हुआ निर्णय इसका

इस प्रकार किया जाता है कि वालमीक रामायण के मध्य, मनुजी के पुत्र इक्ष्वाक से लेकर श्रीरामचन्द्र जी तक चौतीस ३४ पीढ़ी और पुराणों के मध्य पचपन पीढ़ी लिखी गई हैं तथा इक्ष्वाक के समकालीन पुरूरवा से लेकर युधिष्ठर तक पुराणों के मध्य पैतालीस पीढ़ी लिखी गई हैं। यद्यपि समय श्रीरामचन्द्र जी का युधिष्ठिर जी के समय से अधिक समय पूर्व माना जाता है द्वितीय महाभारत के पश्चात का इतिहास अधिक अंश तक ज्ञात होता है परन्तु रामायण के पश्चात का नहीं, इस कारण रामायण की लिखी श्रीरामचन्द्रजी के पूर्वजों की चौतीस (३४) पीढ़ी वालमीक जी द्वारा घटना काल में-अथवा निकट पश्चात में लिखे जाने के कारण तथा युधिष्ठिर की पीढ़ियों से न्यून होने के कारण अधिक प्रमाणित मानी जा सकती हैं।

यद्यपि पुराणों के लिखे अनुसार श्रीरामचन्द्र तक सूर्यवंश की पचपन पीढ़ी और युधिष्ठिर के समय तक चन्द्रवंश की पैंतालीस पीढ़ी सन्देह रहित नहीं हैं परन्तु इनको स्वीकार कर लेने और विविध सम्वतों व इतिहासों इत्यादि पर ध्यान देने से जिस प्रकार का मत प्राप्त होता है उसके अनुसार मनु जी का समय पांच सहस्र वर्ष से अधिक किसी प्रकार पाया नहीं जाता विवरण इसका इस प्रकार है कि शासन काल अरसठ मुसलमान बादशाहों का शहाबुद्दीन से लेकर जिसने सन् ११९३ ई० में

दिल्ली का सिंघासन प्राप्त किया मुहम्मद बहादुर शाह बादशाह तक जो सन १८५७ ई० में अङ्गरेजों के द्वारा दिल्ली के सिंहासन से प्रथक किया गया छहसौ चौसठवर्ष होता है। इसके अनुसार औसत शासन प्रत्येक बादशाह का लगभग दस वर्ष के और अल्पकाल वाले बाईस बादशाहों को छोड़कर लगभग चौदह वर्ष के प्राप्त होता है। दूसरे कर्नल टाड साहब के लेखानुसार राजपूतानावाले राजाओं का औसत बाईस साल है इस के अतिरिक्तपुराणों के लिखे अनुसार महाभारत के पश्चात वाले राजाओं का शासन काल इस प्रकार पाया जाता है कि रिपुंज्य के मन्त्री सुनक के घराने में पांच राजाओ ने १३० एकसौतीस वर्ष तक शासन किया। इसके पश्चातनागवंशी दसराजाओं ने ३६५ तीनसौ पैंसठ वर्ष तक शासन किया तथा मौर्यवंशी दस राजाओ ने १३७ एकसौ सैंतीस वर्ष तक शासन किया और सुङ्गवंशी आठ राजाओं ने १०२ एकसौ दो वर्ष तक शासन किया। इस प्रकार चार घराने के ३३ तंतीस राजाओं ने ७३४ सातसौ चौंतीस वर्षतक शासन किया है। इसके अनुसार भी औसत हिसाब से शासन काल प्रति राजा बाईस साल चार मास होता है। इसलिये महाभारत से प्रथम समय के राजाओं का शासन काल भी प्रति राजा पचीस साल से अधिक माना नहीं जा सकता और शासन काल प्रति राजा पचीस वर्ष ठहराकर मनुजी का समय निश्चित कियाजाता है।

प्रथम टाड साहब ने पुराणों के, जैनियों के और रजवाड़ों के लिखे इतिहासों द्वारा अधिक खोजकर रामचन्द्रजी से विक्रम तक सत्तावन राजा निश्चित किये हैं। इसलिये श्रीरामचन्द्रजी तक पुराणों के लिखे अनुसार पचपन पीढ़ी और टाड साहब के लिखे अनुसार रामचन्द्रजी से विक्रम तक ५७ सत्तावन पीढ़ी मानलेने से मनुजी से विक्रम तक सब राजा ११२ एकसौबारह और समय उनके शासन का ( ११२×२५ )=अट्ठाईस सौ वर्ष होता है। तृतीय राजा शिवप्रसाद के लिखे इतिहासानुसार युधिष्ठिर से विक्रम तक सत्सठ पीढ़ी मानीगयी हैं इस लिये पुराणों के लिखे अनुसार युधिष्ठिर के समय तक चन्द्रवंशी राजाओं की पैंतालीस पीढ़ी मानलेने से पुरूरवा से विक्रम तक ( ४५+६७ )=११२ राजाओं का शासनकाल भी उतनाही अर्थात् २८०० अट्ठाईस सौ वर्ष पायाजाता है। तृतीय जल प्रलय की घटना जो मनुजी के समय में घटित हुई और अन्य जातियों में भी तूफान नूह के नाम से मानीगई इसका सम्वत भी सन १६३४ ई०तक ५०३४ वर्षमानागया है इसलिये मनुजीका समय पांचसहस्र वर्ष से अधिक किसी प्रकार माना नहीं जासकता। यदि मनुजी का समय पांच सहस्र वर्ष पूर्व मानाजावे और युधिष्ठिरजी का समय मनु से लगभग पचास पीढ़ी पश्चात माना जावे जिसके मानलेने में किसी प्रकार का अधिक अन्तर संभव नहीं तो निम्न लिखित घटनाओं का समय इस प्रकार निश्चित होता है कि

पुस्तक के लिखे जाने के समय से मनुजी का समय लग भग पाँचसहस्र वर्ष,पूर्व द्वतीय महाभारतकी घटना मनुजी के समयसे लगभग १३०० तेरह सौ वर्ष पश्चात, तथा इस समय से लगभग ३७०० सैंतीससौ वर्ष पूर्व, तृतीय बौद्धजी का समय महाभारत के समय से लग भग बारह सौ वर्ष पश्चात तथा इस समय से पच्चीससौ वर्षपूर्व, चतुर्थ सिकन्दरयूनानी का आक्रमण महाभारत से लगभग १४४० वर्ष पश्चात, तथा इस समय से २२६० बाईससौ साठ वर्ष पूर्व हुआ है।

बौद्धकाल तकही आर्य जातिका दृष्टि कोण संसारिक लाभों की ओर अधिक आकृष्ट रहा तत्पश्चात बौद्धधर्म की परमार्थिक शिक्षा के प्रभाव से यह जाति उदासीन बनगई और परमार्थ वाद के कल्पित वायुमण्डल में भ्रमण करने लगी तथा धार्मिक विरोध के कारण परस्पर लड़ झगड़ कर निर्बल भी अधिक बनगई जिसके फल स्वरूप विदेशियों के आक्रमण प्रारम्भ हुये और जाति का गौरवरूपी सूर्य क्रमक्रमसे अस्ताचल की ओर गमन करनेलगा।

सूर्य तथा चन्द्र वंशी प्राचीनशासकों के नाम जो प्राप्त होते है सूची उनकी नीचे प्रकाशित कीजाती है।

वालमीक रामायण के लिखे अनुसार इक्ष्वाक से लेकर श्रीरामचन्द्र तक सूर्यवंशी राजाओं की नामावली इस प्रकार है कि (१) इक्ष्वाक (२) कुक्षि (३) विकुक्षि (४) वाण (५) अरण्य

(६) प्रथु (७) त्रशंकु (८) धुन्धमार (६) भुवनाश्व (१०) मानधाता (११) सुसन्धि (१२) ध्रुव सन्धिक इनके पुत्र भरत हुये (१३) असित (१४) सगर (१५) असमंजस (१६) अंशुमान (१७) दिलीप (१८) भागीरथ (१६) कुकुत्स्थ (२०) रघु (२१) प्रवृद्ध (२२) शंखण (२३) सुदर्शन (२४) अग्निवर्ण (२५) शीघ्रग (२६) मरु (२७) प्रशुश्रुक (२८)अम्बरीक(२६)नहुष(३०) ययात(दूसरा ययात चन्द्रवंश में उत्पन्न हुआ) (३१) नाभाग (३२) अज (३३) दशरथ (३४) श्रीरामचन्द्र- श्रीरामचन्द्रजी के पश्चात सूर्य वंशी शाखा निर्बल होगई और सूची राजाओं की कृमबद्ध प्राप्त नहीं होती परन्तु चन्द्रवन्शी शाखा अधिक प्रसिद्ध हुई और शासक इसके सन ईसवी की बारहवीं शताब्दी के अन्ततक दिल्ली के सिंहासन पर विराजमान रहे इसलिए युधिष्टिर से लेकर पृथ्वीराज तक जो राजा दिल्ली के सिंहासन पर वैठे हैं और सूची उनकी किसी हस्त लिखित पुस्तक के आधार पर जो सत्यार्थ प्रकाश द्वारा प्रकाशित हुई है यहां उद्धृत की जाती है इसमें शासन-काल प्रति राजा जो लिखे गए हैं अत्यन्त अधिक हैं उस पर विश्वास किया जाना अति कठिन है परन्तु दिन और महीनों को न्यूनाधिक करके केवल वर्ष के अङ्क प्रत्येक नाम के साथ लिखे जाते हैं :- (१) युधिष्टिर ने ३६ वर्ष शासन किया (२) परीक्षित ६० (३) जनमेजय ८४ (४) अश्वमेध (८) (५) द्वितीय राम ८८ (६) छत्रमल ८१ (७) चित्ररथ ७५ वर्ष

( ८ ) दुष्ट शैल्य ७८ वर्ष ( ६ ) उग्रसेन ७६ ( १० ) शूरसेन ७६ ( ११ ) भुवनपति ६६ ( १२ ) रणजीत ६८ ( १३ ) ऋत्तक ६५ ( १४ ) सुखदेव ६२ ( १५ ) नरहरि देव ५२ ( १६ ) शुचिरथ ४२ ( १७ ) शूरसेन द्वितीय ५६ ( १८ ) पर्वतसेन ५६ ( १६ ) मेधावी ५२ (२०) सोनचीर ५१ (२१) भीमदेव ४८ (२२) नृहरिदेव ४६ ( २३ ) पूर्णमल ४५ ( २४ ) करदवी ४५ ( २५ ) अलंमिक ५१ ( २६ ) उदयपाल ३६ ( २७ ) दुवनपाल ४१ ( २८ ) दमात ३२ ( २६ ) भीमपाल ५८ ( ३० ) क्षेमक ४८ ( इतिहासक पुस्तकों में क्षेमक तक २६ राजा लिखेगये हैं ) क्षेमक को इसके मन्त्री विश्रुवाने मारकर राज्यप्राप्त किया और १७७४ वर्ष बाद युधिष्ठिर का घराना समाप्तहो गया।

दूसरा वंश विश्रुवा का। पीढ़ी चौदह वर्ष पांचसौ५०० :—

( १ ) विश्रुवा १० वर्ष ( २ ) पुरसेन ४२ ( ३ ) बीरसेन ५३ ( ४ ) अनङ्गशायी ४८ ( ५ ) हरिजित ३६ ( ६ ) परमसेनी ४४ ( ७ ) सुखपाताल ३० ( ८ ) कद्रुत ४२ ( ६ ) सज्ज ३२ ( १० ) अमरचूड़ २७ ( ११ ) अमीपाल २८ ( १२ ) दशरथ २५ ( १३ ) बीरसाल ३२ (१४) वीरसालसेन १७। इसको प्रधान वीरमहाने मार कर राज्य प्राप्त किया और वंश विश्रुवा का समाप्त हुआ।

तृतीय वंश वीरमहा का, पीढ़ी सोलह वर्ष चारसौ पैंतालीस—

( १ ) वीरमहा वर्ष ३६ ( २ ) अजितसिंह २८ ( ३ )

सर्व दत्त २८ (४) भुवनपति १५ (५) वीरसेन २१ (६) महीपाल ४१ (७) शत्रुपाल २६ (८) संघराज १७ (६) तेजपाल २६ (१०) माणिकचन्द ३८ (११) कामसेनी ४२ (१२) शत्रुमर्दन ६ (१३) जीवनलोक २६ (१४) हरिराव ४७ (१५) वीरसेन दूसरा ३५ (१६) आदित्यकेतु २४ आदित्यकेतु को प्रयाग के राजा धन्धर ने मारकर राज्य प्राप्त किया।

वंश चौथा धन्धर का, राज्य किया, पीढ़ी नौ वर्ष ३७५—

(१) धन्धर वर्ष ४२ (२) महर्षि ४१ (३) सनरची ५१ (४) महायुद्ध ३० (५) दुर्नाथ २८ (६) जीवनराज ४५ (७) रुद्रसेन ४७ (८) आरीसक ५३ (६) राजपाल ३६ राजपाल को उसके सामन्त महानुपाल ने मारकर एक पीढ़ी राज्य किया।

पांचवां वंश महानुपाल पीढ़ी १ वर्ष १४—

(१) महानुपाल इसको उज्जैन के राजा विक्रमादित्य ने मारकर राज्य पाया।

छठा वंश विक्रमादित्य पीढ़ी एक वर्ष ६३—

विक्रमादित्य को दक्षिण के ब्राह्मण राजा शालिवाहन के सामन्त समुन्द्रपाल योगी ने मार कर राज्य प्राप्त किया और इस समय से शाका शालिवाहन के नाम का प्रचलित हुआ।

सातवां वंश समुन्द्रपाल योगी पीढ़ी सोलह वर्ष ३६८——

(१) समुन्द्रपाल ५४ (२) चन्द्रपाल ३६ (३)

सहायपाल ११ (४) देवपाल २७ (५) नरसिंहपाल १८ (६) सामपाल २७ (७) रघुपाल २२ (८) गोविन्दपाल २७ (९) अमृतपाल ३७ (१०) वलीपाल १२ (११) महीपाल १४ (१२) हरीपाल १२ (१३) सीसपाल १२ (१४) मदनपाल १८ (१५) कर्मपाल १६ (१६) विक्रमपाल२५। इस विक्रमपाल को पश्चिम दिशा के राजा मलुखचन्द ब्योहरे ने मारकर राज्य पाया।

वंश आठवां मलुखचन्द पीढ़ी दस वर्ष १९१—

(१) मलुखचन्द वर्ष ५४ (२) विक्रमचन्द १३ (३) अमीनचन्द १० (४) रामचन्द्र १४ (५) हरीचन्द १५ (६) कल्याणचन्द १० (७) भीमचन्द १६ (८) लोवचन्द२६ (९) गोविन्दचन्द ३२ (१०) रानीपद्मावती १साल। यह रानी बिना औलाद मरगई इसलिये इसके कर्मचारियों ने हरि प्रेम वैरागी को गद्दी पर बैठा दिया।

वंश नवां हरिप्रेम वैरागी पीढ़ी चार वर्ष ५०—

(१) हरि प्रेम वैरागी वर्ष ७ (२) गोविन्द प्रेम २० (३) गोपाल प्रेम १६ (४) महाबाहु ७। यह महाबाहु राज्य त्यागकर जङ्गल को चला गया और बंगाल के राजा आदिसेन ने आकर सिंहासन प्राप्त किया।

दसवां वंश आदिसेन का, पीढ़ी बारह, वर्ष १५१—

(१) आदिसेन वर्ष १८ (२) विलावनसेन १२ (३)

केशवसेन १६ (४) माधसेन १२ (५) मयूरसेन २१ (६) भीमसेन ६ (७) कल्याणसेन ५ (८) हरीसेन १२ (९) क्षेमसेन ६ (१०) नारायनसेन २ (११) लक्ष्मीसेन २७ (१२) दामोदरसेन ११। इसको इसके उमराव दीपसिंहने मार कर राज्य पाया।

वंश ग्यारहवां दीपसिंह, पीढ़ी ६, वर्ष १११—

(१) दीपसिंह वर्ष २७ (२) राजसिंह १४ (३) रणसिंह १० (४) नरसिंह ४५ (५) हरिसिंह १३ (६) जीवनसिंह २ जीवनसिंह को अजमेर के राजा पृथ्वीराज चौहान ने मारकर दिल्ली का राज्य पाया परन्तु इतिहासिक पुस्तकों में लिखा गया है कि इसके नाना दिल्ली के राजा अनङ्गपाल ने गोद लिया था इस कारण दिल्ली का राज्य भी इसको प्राप्त हुआ।

बारहवां वंश पृथ्वीराज का हुआ—

इतिहास द्वारा लिखागया है कि इसने १२ वर्षतक दिल्ली का सिंहासन अपने अधिकार में रक्खा तत्पश्चात सन् ११९३ ई० में गोर और गजनी (अफगानिस्तान के सूबे) के हाकिम शहाबुद्दीन के द्वारा मारागया और शहाबुद्दीनकागुलाम तथासेनापति दिल्ली और अजमेर का अधिकारी बना इसी समय से इस देशमें हिन्दू राजाओं का शासनाधिकार समाप्त होगया और मुसलमान बादशाहों का प्रारम्भ हुआ यद्यपि पञ्जाब का प्रान्त सन् १००१ ई० मेंही मुसलमानोंके अधिकार में आगयाथा

और गजनी के बादशाह महमूद के वंशज उसपर शासनकर रहेथे परन्तु इस देश की राजधानी दिल्ली है इस कारण दिल्ली पर अधिकार पाने के समय से मुसलमानों का शासन इस देश में मानाजाता है और मुगलों समेत सात घराने के बादशाहों ने इसपर शासन किया है नाम उन घरानों के यह हैं।

प्रथम वंश मुहम्मदगोरी जिसने पृथ्वीराज पर विजय पाकर दिल्ली का सिंहासन प्राप्त किया और केवल तेरह वर्षतक अधिकारी रहकर अफगानदेश की सीमापर खग्गर जाति के गुप्तघातकों के द्वारा मारागया।

दूसरा २ वंश गुलाम बादशाहो का हुआ जिसके दस बादशाहों ने (स० १२०६ से १२९० ई०) चौरासी ८४ वर्ष तक शासन किया। दिल्ली की प्रसिद्ध कुतुब मसजिद और कुतुब मीनार इसी घराने के प्रथम बादशाह कुतुबुद्दीन ने बनवाई जो इस समय तक विद्यमान है सब बादशाहों के नाम प्रचलित इतिहासों द्वारा प्रकाशित हैं। इसकारण लिखाजाना उनका आवश्यक नहीं सन् १२१२ में चंगेजखां तातारी भी इनही बादशाहों के समय में आया जिसका लूटना भूकना या कतलकरना यह देश इस समय तक नहीं भूला।

तीसरा वंश खिलजी बादशाहों का हुआ इसके चार बादशाहों ने तीस वर्ष तक शासन किया दूसरे बादशाह

अलाउद्दीन ने हिन्दू जाति को अत्यन्त अपमानित किया और दक्षिण तथा चित्तौड़ का प्रथम पराजय इसी के द्वारा हुआ इसका समय सन् १२६५ से १३१५ ई० तक रहा।

चौथा घराना तुगलक बादशाहों का हुआ जिसने पीढ़ी ८ वर्ष ६४ तक शासन किया। सन् १३६८ ई० में तैमूर (तातारी) का भयंकर आक्रमण इनही बादशाहों के समय में हुआ जिसने लाखों मनुष्यों का गला कटवाया और लाखों को पकड़ कर साथ ले गया।

पांचवां घराना सय्यद बादशाहों का हुआ जिसमें चार बादशाहों ने छत्तीस वर्ष तक शासन किया इनके समय में सिंहासन की शक्ति अधिक क्षीण हो गई और लोदी घराने में बदल गई।

छठवां घराना लोदी बादशाहों का हुआ जिसके तीन बादशाहों ने छहत्तर वर्ष तक शासन किया सन् १५२६ ई० में इसका तीसरा बादशाह इब्राहीम लोदी काबुल के मुगल बादशाह बाबर के द्वारा पराजित हुआ और दिल्ली का सिंहासन मुगल घराने में चला गया।

सातवां घराना मुगल बादशाहों का हुआ जिसके पन्द्रह बादशाहों ने ३३१ वर्ष तक शासन किया। (सन् १५२६ से १८५७ ई० तक) और शासन इसका पिछले सब घरानों की अपेक्षा अधिक वैभव सम्पन्न हुआ यद्यपि अन्त भी इसलामी

हुकूमत का इन्हीं के समय में हो गया तथा भारतवर्ष का शासन जो वास्तव में मुगलों के हाथ से निकलकर मरहठों के अधिकार में आ चुका था परस्पर की ईर्षा और वैमनस्यता के कारण स्थिर न रह सका और बृटिस जाति के अधिकार में चला गया जिसकी कम्पनी समेत इस समय चौथी पीढ़ी व्यतीत हो रही है अर्थात ईस्टेन्डिया कम्पनी का शासन अधिकार गदर सन् १८५७ ई० के पश्चात् न रहा इंगलिस्तान की मलिका विक्टोरिया के अधिकार में चला गया और सन् १९०१ई० में महारानी विक्टोरिया के स्वर्गवास हो जाने पर उनके पुत्र महाराज एडवर्ड सप्तम को सिंहासन प्राप्त हुआ सन् १९१० ई० में इनके भी स्वर्गवास हो जाने पर इनके पुत्र महाराजाधिराज जार्ज पंचम ने उक्त सिंहासन को सुशोभित किया और इनके ही समय में यह हिन्दू जाति अपने एक सहस्र वर्ष के खोये हुये देशाधिकार के पाने की भी पुनः आशा कर रही है।

अगले अध्याय में आर्य जाति के आदि स्थान और उसकी वैदिक शिक्षा सभ्यता का वर्णन किया जाता है।

# आर्य जाति का आदि स्थान और उसकी वैदिक शिक्षा सभ्यता

आर्य जाति की जातीय व्यवस्था संसार की प्रथम व्यवस्था है और व्यवस्थापक इसके मनुजी महाराज हुये हैं, जिनकी निर्दिष्ट की हुई शासन वा सामाजिक व्यवस्था हिन्दू जाति के मध्य इस समय में भी मानीजाती है। इनके इक्ष्वाकु आदि दस पुत्रों तथा ईला नाम पुत्रीके वंशजों ने देश देशान्तरों के मध्य सूर्य्य वा चन्द्रवंशी राज्यों की स्थापना की और पुत्रों के राज्य सूर्यवंशी तथा पुत्री वंश के राज्य चन्द्रवंशी कहलाये। अयोध्या, काशी, कन्नौज, मथुरा, प्रयाग, दिल्ली, लखनऊ, पंजाब, और दक्षिण भारत में भी कुछ नग्र सूर्य्य तथा चन्द्रवंशी राजाओं के बसाये हुये हैं। प्राचीनकाल में आर्य्य जाति भूगोल के यद्यपि अनेक भागों में जाकर बसी और उत्तरी ध्रुव तक पहुँची परन्तु इसकी भाषा और सभ्यता के चिन्ह ईरान से लेकर भारतवर्ष तक अधिक पायेजाते हैं। तथा भारतवर्ष में इसकी भाषा और सभ्यता इस समय तक जीवितभी बनी हुईहै। ईरान की पर्शियन भाषा संस्कृतभाषा से अधिक मिलती है और पारसी जाति की धर्म पुस्तक जिन्दावस्ता की भाषा वा सभ्यता ऋग्वेद की भाषा वा सभ्यतासे अधिक अन्तर नहीं रखती। वास्तवमें आर्यजाति इसी भूमिकी आदिम निवासी है

जो ईरान से भारतवर्ष तक फैली और आर्य्य भाषा में जम्बूद्वीप के नाम से प्रसिद्धि हुई। तथा पामीर पर्वत का नाम सुमेरुपर्वत है जो भारतवर्ष के वायव्यकोण पर (उत्तर पश्चिम) अवस्थितहै और अनेक बड़ी २ पर्वत श्रेणियोंका मूल स्थान भीहै, संभवतः यही कारण उसके सुमेरु पर्वत बोले जाने का हुआ है। प्राचीनकाल में उक्त देशों के मध्य परस्पर सम्बन्ध भी अधिक रहा। गान्धारीक़न्धार (काबुल देश का एक नग्र) की और माद्री ईरान की राजकन्यायें थीं जो धृतराष्ट्र वा पाण्डव राजाओंको ब्याही गईं। परन्तु मुसल्मानों के आधीन होजाने और इसलाम धर्म के स्वीकार करलेने के समय से उक्त देशों का सम्बन्ध इस देश के साथ अधिक न रहा। जल प्रलय के (तूफान नूह के) निवृत्त होजाने पर समय जिसका पांच सहस्र वर्ष मानाजाताहै। अनेक जातियां पर्वतों से उतर कर भूमि पर आईं और उत्तम भूमि की प्राप्ति के लिये अनेक शताब्दियों तक परस्पर लड़ती झगड़ती रहीं। उसी समय में आर्य्य जाति भी हिमालय की पश्चिमी सीमा से उतर कर भूमि पर आई और क्रम २ से भारत, ईरान, मिश्र, इटली, यूनान, तथा योरोप और एशिय के अनेक देशों में जाकर बसगई परन्तु प्रथम ईरान से लेकर भारतवर्ष तक अधिक बसी तथा अधिक उन्नति अवस्था को प्राप्त हुई। प्राचीनकाल में अफगानदेश कोई प्रथक देश न था मुसलमानों के अधिकारकाल से प्रथम यह देश ईरान औ

भारतवर्ष के मध्य सदैव काल तक बढ़ा रहा, परन्तु भूमि वा जल वायु के उत्तम न होने के कारण स्वयम् आर्य्य जाति इसके मध्य नहीं बसी, संभवतः इसी कारण मिश्र, इटली, यूनान, ईरान और भारतवर्ष के समान उन्नति भी इस देश को इस समय तक प्राप्त न होसकी।

भारतवर्ष की उत्तम भूमि पर आकर आर्य्य जाति ने जो जो विचार अपने प्रकट किये उनका प्रथम संग्रह ऋगवेद है और संसार की प्रथम रचना है। इसके पूर्वकाल का कोई ग्रन्थ किसी अन्य जाति के साहित्य भण्डार में पाया नहीं जाता। इसके मध्य दस मण्डल, एक सहस्र अट्ठाईस सूक्त, और दस सहस्र पांचसो अठारह मन्त्र हैं जिनके द्वारा लोक परलोक सम्बन्धी सब प्रकार का ज्ञान प्राप्त होता है, अर्थात् उनके द्वारा ईश्वरकी शक्ति मनुष्यकाधर्म वा कर्तव्यतथा प्रकृतिकी उपयोगिता प्रकट कीगई है। सृष्टि के विषय में इस जाति ने ब्रह्म, जीव और प्रकृति इन तीन वस्तुओं को अनादि माना है और सृष्टि के सम्पूर्ण समय को 'अनादिसान्त' अर्थात् प्रत्येकवारके विकाश और विराम के प्रति एक एक कल्प का समय निर्दिष्ट किया है तथा समय एक कल्प का चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष मानागया है। पृथ्वी, सूर्य्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, इन्द्र (स्वर्ग वा देवता) वरुण (जलका देवता) कुवेर (धनका देवता) और मरुत्, (वायु) विद्युत, अग्नि, ऊषा (प्रभात काल), सोम

( एक हर्ष वर्द्धकलता ), अन्तरिक्ष ( आकाश सब वस्तुओं का निवास स्थान ) इत्यादि प्रकृति की व्यापक और दिव्य गुण वाली वस्तुओं को देव शब्द के द्वारा सन्मानित कियागया है। सर्व हितकारी जड़ वस्तुओं का भी आदर किया जाना हिन्दू जातिकी विशेष सभ्यता है जो अन्य जातियों के मध्य पाई नहीं जाती। अर्थात् आर्य्यजाति ने प्रकृति की प्रत्येक सर्वगत वा सर्वहित वस्तुकोईश्वरकाही अंश मानाहै। जिसकाभाव अन्य जातियों के हृदयमें उत्पन्न नहीं हुआ। प्रकृतिकी सब वस्तुओंमें अग्निकी प्रधानताहै जोचराचर जगतमें व्यापकहै और मनुष्य के जीवन का प्रधान साधन है। जातीय शक्ति के प्रति अनेक राजाओं को संघटित रखने के अभिप्राय से यज्ञोंका विधान नियत किया गया है और वेदों के द्वारा बलिदान की आज्ञा यद्यपिस्पष्ट रूप से प्राप्त नहीं परन्तु शत्रुओंवा दुराचारी मनुष्यों के प्रति अपने हृदय को कठोर रखने के लिये इस जाति के मध्य बलिदान की प्रथा भी अवश्य प्रचलित रहीजो अनेक जातियों के द्वारा इस समय में भी उचित मानी जाती है। इस जाति के रचित वेदादि ग्रन्थों के द्वारा ईश्वर का भय, जीवन का बन्धन मोक्ष, पुनर्जन्म, और परलोक सम्बन्धी दुख सुख का प्राप्त होना भी प्रकट किया गया है, कि मनुष्यों के हृदय में दण्ड का भय बना रहे और समाज के मध्य अशान्ति का वातावर्ण उत्पन्न न होसके। राजा और प्रजा का सम्बन्ध पिता और पुत्र के

समान उचित माना गया है हृदय में जिस भाव के स्थिर बने रहने से देशके मध्य विरोध वा दुख दरिद्रता का उत्पन्न होना सम्भव न हो सके। गृहसुख और समाज की उत्तम व्यवस्था के लिये पति और पत्नी का सम्बन्ध भी इस प्रकार का माना है कि पत्नी भक्ति भाव से सदैव अपने पति की अध्यक्षता में रहे उसको छोड़कर दूसरा पति बनाने की इच्छा न करे तथा पति पत्नीको सदैव सुख वा आदर पूर्वक रक्खे वन्ध्या वा कुरूप होने पर भी निरादर अथवा परित्याग न करे। इसी नीति के फल स्वरूप उच्चकुलकी आर्य्यस्त्रियां पतिकेन रहनेपर दूसरा पतिबनाना स्वीकार नहीं करतीं और दूसरे पति की अपेक्षा अपनी प्रशंसा का लाभ प्राप्त करना उचित समझती है। इसी प्रथा के कारण हिन्दू जाति के समान शान्ति मय गृह जीवन किसी अन्य जाति के मध्य पाया नहीं जाता। अर्थात् संसारिक जीवन को सुखमय बनाना, उस के अर्थ प्रकृति की शक्तियों पर ध्यान देना, उनके गूढ़तम रहस्यों को समझना, शत्रुओं के विरुद्ध अपने बल पौरुष का बढ़ाना, स्वच्छता पूर्वक रहना और बुद्धि पूर्वक सब काम करना, वेदों की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है। वेदमंत्रों में गायत्री मंत्रकी प्रधानता है जिस के द्वारा ईश्वर से बुद्धि के प्राप्त होने की प्रार्थना की गई है क्योंकि बुद्धि की ही सहायता से मनुष्य इस अत्यन्त भीषण संसार के मध्य सुरक्षित रह सकता और सुख पूर्वक जीवन निर्वाह अपना कर सकता है

वेदों की शिक्षा इसलिये दैवी शिक्षा है कि वह मनुष्य के हितार्थ प्रथम शिक्षा है। प्रत्येक प्रकार के पक्षपात से रहित है। किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा वा देश विशेष की भाषा द्वारा प्रकाशित नहीं हुई। अज्ञान के घोर अन्धकार में जो उत्कृष्ट विचार उनके द्वारा प्रकट हुये वे सभ्यता के इस महान् युग में भी आदर की दृष्टिसे देखे जाते हैं। हिन्दू जाति का दृष्टिकोण जबतक वैदिक नीति से पृथक न हुआ जाति सबल और सुख सम्पन्न बनी रही, परन्तु बौद्धमत के उत्पन्न होने पर जब वैदिक नीति की मर्यादा शिथिल हुई और जातिका जीवन पथ बदल गया उसी समय से यह जाति दिन दिन अधिक गिरती चलीआई है।

उत्तम जीवनकी प्राप्तिके लिये आर्य्यजाति ने चार वर्णों के समान उन्ह वर्णों की आयु को भी चार भागों में विभक्त किया है जिस के अनुसार सामान्यता चौबीस वर्षका प्रथम समय ब्रह्मचर्यका है। आयु के इसभाग मे आर्य्य पुरुष के लिये पूर्ण रुप से जितेन्द्रय रहना, विद्याऽध्यन् करना और अपनी शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों का बढ़ाना अत्यन्त आवश्यक माना गया है। दूसरा भाग आयुका ग्रह जीवन है जिसके अनुसार धनोपार्जन, माता पिता की सेवा, अतिथ सत्कार, सन्तानों का पालन वा शिक्षण, और सामाजिक तथा जातीय कार्यों का किया जाना नितान्तआवश्यकहै। इस कठिन कर्तव्य

का पालन गुण हीन, आलसी वा निर्बुद्धि मनुष्य उचित प्रकार से नहीं करसकते इसकारण जिस जाति के मध्य इस प्रकार के मनुष्य अधिक बढ़जाते हैं उसका अधोगति को प्राप्त होजाना आवश्यम्भावी होजाता है। तीसरा भाग आयु का वानप्रस्थ है। कर्तव्य इसका यह है कि अधिक आयुके प्राप्त होजाने तथा सन्तानों के भी गृहस्थाश्रम स्वीकार कर लेने पर मनुष्य स्वयम वा स्त्री समेत गृह जीवन को त्याग दे और विद्वानों वा विचारवान पुरुषों के समीप रहकर अपने ज्ञान को बढ़ावे। वास्तव में यही समय है कि मनुष्य संसारिक परिश्रमों वा चिन्ताओं से विमुक्त होकर अटल विश्राम पासकता और ज्ञानकी खोज में प्रवृत्ति रहकर अपने मनको प्रसन्न रखसकता है। परन्तु सम्प्रतिकालमें जीवनशैली के बदलजाने और उद्यमको कठिनताओं के अधिक बढ़ जाने से जाति के मध्य यह प्रथा प्रचलित न रह सकी। चौथा आश्रम सन्यास नाम का है जो वानप्रस्थ आश्रम के पश्चात कुछ आयु के शेष रहजाने पर उचित माना गया है। कर्तव्य इसका यह है कि सर पर बालों को न रक्खे, गेरुवे वस्त्र धारण करे, निष्पक्ष भाव से उत्तम उपदेश देता हुआ संसारमें विचरे, किसी स्थान में अधिक दिनो तक न ठहरे, सबकाबनाया भोजन करे, द्रव्यका सञ्चय कदापिन करे इत्यादि। इस समयमें सन्यास आश्रम का स्थान यद्यपि बना हुआ है परन्तु कर्तव्य उसका पालन नहीं होता। इस देश के मध्य निम्न श्रेणी के लक्षों मनुष्य इसी वेष में

फिरा करते हैं परन्तु ज्ञान रहित होने के कारण जाति को लाभ उनके द्वारा किसी प्रकार का प्राप्ति नहीं होता। अनेक उनमें दुराचारी भी हैं और जाति को लाभ के स्थान में हानि पहुँचाते हैं।

चारसौ वर्ष पूर्वतक शिक्षा का प्रचार किसी जाति के मध्य अधिक न था और कागज बनाने वा छापने के यन्त्र भी आविष्कृत न हुये थे जिनके द्वारा शिक्षा का अधिक प्रचार कियाजाना सम्भव होता। योरोप की जातियां भी जो इस समय शिक्षा और सभ्यता में अद्वितीय मानीजाती हैं पन्द्रहवीं शताब्दी तक अशिक्षित अवस्थामेंही रहीं। उस समय तक किताबें हाथ से लिखीजातीथीं और मूल्य उनका अधिक होता था इस कारण केवल धनाढ्य मनुष्यही उनको लेसक्ते तथा पढ़सक्तेथे और पुस्तकें जो लिखीजातीथीं ज्ञानविज्ञान सन्बन्धी नथीं। विषय उनका बहुधा धार्मिक कथायें वा कल्पित कहानियां होताथा, जिनके द्वारा हृदय में असम्भव और आश्चर्यजनक बातों के सुनने वा मानलेने का भाव उत्पन्न होजाता था। कुछ वैज्ञानिक पुस्तकें जो हिन्दुओं वा यूनानियों द्वारा लिखीगयीथीं वे भी उक्त कारणों से पन्द्रहवीं शताब्दी तक सर्वजनक न हो सकीं। अन्य जातियों की अपेक्षा हिन्दूजाति के मध्य शिक्षा का प्रचार यद्यपि अधिक था परन्तु साधारण मनुष्यों के लिये वर्णाश्रम धर्म्म के अनुसार अपने २ कार्य्य विशेष में कुशल

होना और ज्ञान की प्राप्ति के लिये कथा पुराणों का श्रवण करनाही आवश्यक समझा जाता था ।

शिक्षा का प्रयोजन जो सभ्य, सदाचारी और कार्य्य कुशल बनना है यह गुण हिन्दू जाति के मध्य किसी अंश तक एक सहस्र वर्ष पूर्वतक विद्यमान रहे । यूनानी, चीनी, आदि यात्री जो भ्रमण करने के प्रयोजन से इस देश में आये उनके लिखे इतिहासों द्वारा हिन्दू जाति की कार्य क्षमता, सत्यनिष्ठा, और सुख शान्ति का हाल अधिक अंशतक ज्ञात होता है तथा सम्प्रति काल में इस देश के मध्य सुख शान्तिका जो अधिक होना माना जाता है वह केवल मुसलमानों के शासनकाल की अपेक्षा अधिक है परन्तु हिन्दुओंके शासनकालकीअपेक्षाअधिक नहीं । हिंदुओं के शासन काल में जातीय शिक्षा के फल स्वरूप सत्य व्योहार अधिक था और राजाओं के मध्य जो अधिक युद्ध होते थे वे जनता की अशान्ति के कारण न थे अर्थात बस्तियों वा किसानों की हानि उनके द्वारा न होती थी । इस समय में देश के मध्य छल कपट असत्य भाषण और असत्य व्योहार जो अधिक पाया जाता है । कारण इसका केवल जन संख्या की वृद्धि वा उद्यम की कठिनता नहीं किन्तु जातीय शिक्षा और जातीय भावों का बदल जाना भी है । पश्चिमी शिक्षा प्रणाली इस देश के मध्य जो प्रचलित है व्ययसाध्य अधिक है तथापि विचार शीलता, सत्य निष्ठा, वा कार्य क्षमता

वा परस्पर उचित व्योहार करने का भाव पैदा नहीं होता। बहुधा अधिक शिक्षित व्यक्तियों में भी यह गुण पाये नहीं जाते कि अपनी त्रुटियों पर ध्यान दें, भविष्य पर दृष्टि रक्खें और व्योहारिक कार्य्यों में विश्वस्त बनना उचित समझें।

संसारमें मस्तिष्क सम्बन्धो कार्यों की अपेक्षा श्रम सम्बन्धी कार्यों के प्रतिमनुष्योंकी अधिक आवश्यक्ताहै और शिक्षितमनुष्य अधिक परिश्रम नहीं कर सकते तथा परतंत्र रहना भी स्वीकार नही करते इस लिये इस समय में सर्व जनक शिक्षा जो उचित मानी जाती है इसके फल स्वरूप प्रत्येक मनुष्य के हृदय में स्वतंत्रता का भाव अधिक बढ़ गया है और प्रत्येक कार्य यंत्रों द्वारा किये जाने से श्रम की आवश्यकता अधिक अंश तक घट गई है जिसके फल स्वरूप शान्ति और उद्यम का प्राप्त होना अति कठिन होगया है। यद्यपि सर्व जनक शिक्षा और यन्त्र कला का प्रचार इस समय तक केवल गोरी जातियों ही तक सीमित है। जापानके अतिरिक्त रंगीन बहुसंख्यक जातियों के मध्य शिक्षा वा यन्त्र कला का प्रचार अधिक नहीं हुआ। इसलिये पूर्ण फल इसका भविष्य के गर्भ में है। अन्त में जातियां शिक्षा की इस नीति से फिरकर यातो प्राचीन हिन्दू [illegible]ति को ही पुनः स्वीकार करेंगी अथवा अधिक संख्या में न [illegible]र श्रम रहित सुख शान्ति का जीवन प्राप्त करेंगी। प्रत्येक [illegible]तिके प्रति उचित है कि जन संख्या के अनुसार अपने मध्य

प्रत्येक प्रकार की विशेष शिक्षा तथा यन्त्रों के प्रयोग को अपने मध्य सीमित रक्खें। आर्य्य जाति के साहित्य का विवरण अगले प्रकरण में दिया जाता है।

# आर्य्य-जाति का विस्तृत साहित्य

किसी जातिकी सभ्यता, योग्यता का ज्ञान पूर्ण रूप से उस के निर्माण कृत साहित्य के द्वारा प्राप्त होसकता है और जातिका जीवन भी उसी पर निर्भर रहता है। यदि किसी कारण साहित्य किसी जातिका विस्मृत वा नष्ट हो जाता है, तो वह जाति अनभिज्ञ वा अनियंत्रित होजाती, अन्य जातियों के प्रभाव से उसकी सभ्यता वा धर्म नीति बदल जाती, और अपने स्वरूपमें न रहकर किसी अन्यस्वरूपमें परिणित होजातीहै। इसीकारण प्रत्येकजाति अपने साहित्यकी रक्षा पर अधिक ध्यान रखती और आपत्तिकाल में भी उसकी रक्षा करना प्राणों के समान आवश्यक समझती है। क्योंकि साहित्य किसी जाति का उसको अनेक शताब्दियोंका लाभ और अनेक विशेष पुरुषों के अधिक परिश्रम का प्रतिफल होता है। साधारण मनुष्यों के द्वारा वा अल्पकाल में उत्पन्न होना उसका संभव नहीं होसकता।

जब कोई सबल जाति किसी निर्बल जातिपर अपने भौतिक बल द्वारा विजय प्राप्त करती है तो विजय उसकी उसी क्षण में समाप्त नहीं होती, और शत्रुभाव उसका तत्काल ही नष्ट नहीं कर सकती किन्तु उसके मध्य अपनी भाषा और सभ्यताका प्रचार करके क्रम २ से अधिक समयमें उसको अपना अङ्ग बना सकती है। मुसलमानों ने इसी प्रकार से एशिया की

अनेक जातियों को अपनी धर्म नीतिके आधीन किया, और क्रिश्चियनोंने योरोप की समस्त जातियों को इसी प्रकार से अपना अनुयायी बनाया है। प्राचीन कालकी ईरानी, मिसरानी, यूनानी, रोमन, बाइबिलन, असीरियन इत्यादि जातियां इसी कारण संसार में अब पाई नहीं जाती कि उनका साहित्य और तदानुसार उनकी सभ्यता वा धर्मनीति संसार में अब शेष न रही क्योंकि इन जातियों ने अपनी धर्म नीति को त्यागकर इसलाम वा क्रिश्चियन् धर्म नीतिको स्वीकार कर लिया संसार में केवल हिन्दू जाति इस प्रकार को है, जिसने अधिक समय तक पराधीन रहकर भी अन्य जातियों के समान अपनी सभ्यता और धर्म नीति का परित्याग नहीं किया तथा साहित्य अपना यथा संभव सुरक्षित रक्खा। इसी कारण आज पर्यन्त सभ्यता और धर्म नीति इसकी स्थिर बनी हुई है और संसार में आश्चर्य की दृष्टि से देखी जाती है।

साहित्य आर्य्य जातिका अधिक विस्तृत है और लगभग प्रत्येक प्रकार के ज्ञान विज्ञान से अलंकृत है इस वैज्ञानिक युगमें किसी किसी प्रकार के ग्रन्थ जो इस के साहित्य में पाये नहीं जाते कारण इसका आर्य्य जाति की अनभिज्ञता नहीं किन्तु प्रथम कारण इसका उस समय के विशेष भाव वा विचार और दूसरा कारण किसी अंशतक इसके साहित्यका नष्टहोजाना है। यथा भूगोल विद्या का कोई ग्रन्थ संस्कृत भाषा में नहीं

परन्तु भूगोल के सातद्वीप नवखण्डों का वर्णन अनेक ग्रन्थों में विद्यमान है और जाति का जाना भी उनके मध्य पाया जाता है। इसी प्रकार से इतिहास का भी कोई ग्रन्थ यद्यपि क्रमबद्ध नहीं परन्तु पुराणों के मध्य इतिहास विस्तृत रूप में लिखा गया है और केवल अपनी जातिका ही इतिहास नहीं किन्तु अन्य जातियों का भी इतिहास उनके द्वारा प्राप्त होता है। जीव विज्ञान वा वनस्पति विज्ञान का भी विशेष ग्रन्थ यद्यपि कोई नहीं परन्तु वृक्षों में जीव के होने का ज्ञान पश्चिमी जातियों के मध्य जो इस समय में उत्पन्न हुआ इस जाति के मध्य प्राचीन काल से ही चला आता है और हरे वृक्षों के काटने वा उनकी छाल के उतारने का विरोध भी इसी कारण किया जाता है। इसी तरह चौसठ प्रकार के कला कौशल भी हिन्दुओं के यद्यपि अधिक प्रसिद्धि रहे हैं परन्तु जाति के मध्य इस प्रकार का ग्रन्थ कोई प्राप्त नहीं होता। कारण इसका यही है कि सहस्रों वर्ष के मध्य जाति अनेक अवस्थाओं में रही और साहित्य इस युग के समान प्रत्येक मनुष्य के अधिकार में न था इस कारण अनेक ग्रन्थ इसके विकृत वा नष्ट हो गये। इस समय में स्मृत वा पुराणादि इसके अनेक ग्रन्थ जो भ्रान्ति पूर्ण अवस्था में पाये जाते हैं उनका संशोधन किया जाना आवश्यक है क्योंकि अन्य जातियों के समान जब इस जाति के मध्य शिक्षा का प्रचार अधिक होगा जाति अपने इस प्रकार के ग्रन्थों

पर श्रद्धा न रक्खेगी। तथा हिन्दी भाषा द्वारा प्रत्येक प्रकार के पश्चिमी साहित्यका अनुवाद कियाजाना भी आवश्यक है क्योंकि अत्यन्त प्राचीन संस्कृत साहित्य की अपेक्षा सम्प्रति काल का पश्चिमी साहित्य अधिक विस्तृत तथा अधिक उपयोगी है। आर्य्य जाति से प्रथम किसी अन्य जाति की उन्नति न हुई थी इस कारण ज्ञान विज्ञान वा कलाकौशल की प्राप्ति के लिये इसको अधिक प्रयत्न करना पड़ा। तत्पश्चात इसी के साहित्य द्वारा अन्य जातियों में भी ज्ञान का प्रकाश हुआ और जाति से जाति के द्वारा क्रम क्रम से इस समय तक उन्नति होता चला आया है।

श्रम विभाग की दृष्टि से आर्य्य जाति ने अपनी सम्पूर्ण जाति को स्वयम् उसी की प्रवृत्ति के अनुसार चार भागों में विभक्त किया अर्थात ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, और शूद्र, जिसके अनुसार ब्राह्मणों का कार्य ज्ञान सम्पादन करना, क्षत्रियों का देश रक्षा करना, वैश्यों का धनोपार्जन करना और शूद्रों का कार्य उक्त तीनों वर्णों को श्रम सम्बन्धी सहायता प्रदान करना माना गया। इस नीति के अनुसार प्रत्येक वर्ण ने अपने अपने कर्तव्य का पूर्ण रूप से पालन किया और इसी नीति के द्वारा सहस्रों वर्ष तक यह जाति ज्ञान वा धन सम्पन्न बनी रही।

प्रथम समय में चार वेदों का प्रकाशन हुआ जिनके द्वारा आर्थिक वा परमार्थिक सब प्रकार का ज्ञान प्राप्त होता है और

मनुष्य को शुद्ध बुद्धि एवं पुरुषार्थ के द्वारा सुख पूर्वक जीवन निर्वाह की शिक्षा प्राप्ति होती है।

वेद संख्या में चार हैं ऋग, यजुर, साम, अथर्व, जो अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भरद्वाज, कण्व, वसिष्ट इत्यादि अनेक ऋषियों द्वारा सम्पादित हुये नाम जिनके वेदों के मध्य पायेजाते हैं और वेद क्रमानुसार वेदव्यास जी द्वारा संग्रहीत हुये माने जाते हैं। यद्यपि वेदो की उत्पत्ति के विषय में सम्पूर्ण जाति के द्वारा यह बात मानी नहींजाती और उत्पत्ति इनकी सृष्टि के आदि में ब्रह्म के द्वारा मानी जाती है।

सबवेदोंमें प्रथम और बड़ासंग्रह ऋग्वेदकाहै अन्य तीनो वेदो में अधिक मन्त्र ऋग्वेद के ही सम्मिलित पायेजाते हैं। ऋग्वेद में दस मंडल एक सहस्र अट्ठाईस सूक्त और दस सहस्र पांचसौ अठारह मन्त्र हैं जिनके द्वारा ईश्वर, जीव और सृष्टि सम्बन्धी प्रत्येक प्रकार का ज्ञान प्राप्त होता है। दूसरे यजुर्वेद के कृष्ण और शुक्ल दोनों भागों मे एक सहस्र नौ सौ चौसठ मन्त्र हैं जो विशेष कर यज्ञों में प्रयुक्त कियेजाते हैं। तृतीय सामवेद मे एक सहस्र चौसठ मन्त्र हैं इसमें सब मन्त्र ऋगवेद के हैं और सोमयज्ञ में पढ़ेजाते हैं। चतुर्थ अथर्ववेद है इस मे पांचसहस्र आठसौ सैंतालीस मन्त्र हैं जो विशेष कर जीवन मरण विवाह और राज्याभिषेकादि कर्मकाण्डोंसे सम्बन्धरखते हैं

इन चार वेदों के अतिरिक्त चार उपवेद, सात ब्राह्मण ग्रन्थ और छह वेदाङ्ग हैं जो भिन्न भिन्न ऋषियों द्वारा सम्पादन हुये । ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद है, इस में शारीरिक (सर्जरी) और चिकित्सा का वर्णन था अब प्राप्त नहीं । अधिक समय पीछे चरक और सुश्रुत दो ग्रन्थ और रचेगये वे इस समय में विद्यमान हैं । दूसरा यजुर्वेद का उपवेद धनुर्वेद है अस्त्र शस्त्र विद्या का ग्रन्थ था अब प्राप्त नहीं । तीसरा सामवेद का उपवेद गन्धर्व वेद है अब प्राप्त नहीं· परन्तु इसके निर्माण कृत (६) छह राग, (३६) छत्तीस रागनी तथा ताल और स्वर इस देश में गाये जाते है भैरव, मालकोश, हिंडोल, दीपक, श्री राग, मलार, यह छह राग हैं । और षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद यह सात स्वर हैं इनही के मिलनेसे छत्तीस प्रकारकी रागनी उत्पन्न हुई हैं चौथे अथर्व वेद का उपवेद अर्थशास्त्र है,इसमें चौंसठ प्रकारके कलाकौशल अथवा अर्थ सम्बन्धी कार्य्यों का वर्णन था परन्तु अब प्राप्त नहीं है यद्यपि इस समय में क्रिश्चियन जातियों के प्रयत्न से संसार के मध्य इसका प्रकाश अधिक हो गया है इसलिये अपने प्राचीन ग्रन्थों के न रहने पर भी हमारे लिये किसी प्रकार के ज्ञान का प्राप्ति कर सकना कठिन नहीं ।

उक्त चार वेदों के द्वारा छह प्रकार के विज्ञान उत्पन्न हुये जो वेदाङ्ग मानेजाते हैं । प्रथम शिक्षा (भाषा)।

दूसरा व्याकरण। तीसरा निरुक्त अर्थात् वेदों का अर्थ ज्ञान्। चौथा कल्प अर्थात् मनु आदि ऋषियों की बनाई बीस स्मृतियां, जिनके मध्य मनुष्यों के कर्तव्याकर्तव्य का निरूपण कियागया है। पांचवां छन्द, इन में वेदों के गान की विधि बताई गई है इस समय में इस विषय का केवल पिङ्गलाचार्य कृत ग्रन्थ प्रचलित है। छठा ज्योतिषहै, इस विषय के ग्रन्थ (१) पाराशर संहिता (२) गर्ग संहिता (३) ब्रह्म सिद्धान्त (४) सूर्य्य सिद्धान्त (५) वशिष्ठ सिद्धान्त (६) पोलिस सिद्धान्त (७) रोमन सिद्धान्त (८) आर्य भट्ट (९) पंच सिद्धान्त (१०) बृहत सिद्धान्त (११) सिद्धान्त शिरोमणि है, जो सन ईसवी की बारहवीं शताब्दी तक लिखे गये। यद्यपि समय किसी ग्रन्थ का उसके द्वारा प्राप्त नहीं होता।

ब्राह्मण ग्रन्थों के मध्य वेदों के कठिन मन्त्रोंकी व्याख्या की गई है और संख्या में लगभग सत्तर के हैं इन में से प्रसिद्ध ग्रन्थ ऐत्तरेय और कौशकी ऋगवेद के शतपथ और तैत्तरीय यजुर्वेद के ताण्डिया, सदविंस, छान्दोग्य, सामवेद के ब्राह्मण हैं। अथर्ववेद का कोई ब्राह्मण ग्रन्थ नहीं है।

उपनिषद ग्रन्थों में ब्रह्म ज्ञान का निरूपण है यह संख्या में ग्यारह हैं नामउनके १ ईश,२ केन,३ स्वेत,४ कठ,५ प्रश्न६ मुण्डक ७ मान्डूक ८ तैत्तरीय ९ एतरेय १० छान्दोग्य ११ बृहदारण्यकहै

इनके मध्य जीव और ईश्वर का विषय विशेष प्रकार से तथा शूक्ष्म रूप से बर्णन किया गया है।

स्मृत्यों के मध्य ग्रह वा समाज सम्बन्धी कर्तव्यों का तथा नियमों के पालन किये जाने का वर्णन है और अनेक ऋषियों द्वारा भिन्न भिन्न काल में लिखी गई हैं, इनमें से मनुस्मृत अधिक प्राचीन और अधिक उपयुक्त मानी जाती है। यद्यपि इसके अतिरिक्त वाशिष्ठ, गौतम, शौध्यायन, याज्ञवल्क्य, पाराशर, नारद, इत्यादि की लिखी स्मृत्यां भी मानी जाती हैं और प्रत्येक के मध्य कर्तव्याकर्तव्य का विधान प्रथक प्रथक है। विद्वानों को एकत्रित होकर इस विशेष काल के प्रति भी धर्म ग्रन्थ की रचना किया जाना आवश्यक है।

पुराण संख्या में अठारहहैं जिनके मध्य सृष्टि की उत्पत्ति, प्रलय, देवताओं वा अवतारों का बर्णन, राजाओं की वंशावली और अलंकृति भाषा द्वारा विविध प्रकार की घटनाओं का बर्णन पाया जाता हैं नाम उनके यह हैं। (१) शिवपुराण श्लोक संख्या चौबीस हजार २४००० (२) भविष्य पुराण श्लोक संख्या १४००० (३) मारकण्डे ६००० (४) लिङ्ग पुराण ११०००(५) वाराह २४००० (६) स्कन्द पु० ८१००० (७) कूर्म १७००० (८) मत्स्य पु० २४००० (६) वामन १०००० (१०) ब्रह्माण्ड १२००० (११) विष्णु १६००० (१२) भागवत १८००० (१३) नारद २५००० (१४) गरुड १६००० (१५)

ब्रह्म १००० (१६) पद्म ५५००० (१७) अग्नि १८००० (१८) ब्रह्म वैवर्तक पुराण श्लोक संख्या १८००० है।

उक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त हिन्दुओं के साहित्य में छः दर्शन हैं जिनके नाम १ सांख्य, २ योग, ३ न्याय, ४ वैशेषक ५ पूर्वमीमांसा, ६ उत्तरमीमांसा (वेदान्त) हैं तथा रामायण और अनेक प्रकार के नाटक भी हैं। जिन में से अधिक प्रसिद्ध शकुन्तला, रघुवंशपुराण, कुमारसम्भव, मेघदूत कालीदास द्वारा लिखे गये हैं और मालती, माधवी, महावीरचरित्र, उत्तर रामचरित्र, भभूती द्वारा तथा पंचतंत्रहितोपदेश कदम्बरी भृत्यहरि-शतक, चाणक्यनीति, विदुरनीति, इत्यादि भिन्न भिन्न कवियों द्वारा लिखे गये हैं जिनके नाम से वे प्रसिद्ध हैं।

षट् दर्शनों के मध्य सृष्टि, जीव और ब्रह्म का विषय वर्णन है कपिल कृत सांख्यदर्शन का मत है कि केवल जीव और प्रकृति अनादि है, ज्ञानके प्राप्ति से जीव की शक्ति बढ़ती और पूर्ण ज्ञान से मुक्ति की प्राप्ति होती है। मुक्ति का अर्थ शारीरिक बन्धन और मानसिक दुःखों से निवृत्त होजाना है जो बारंबार जन्म लेने के कारण प्राप्ति होता है। प्रकृति में चौबीस प्रकार के गुण हैं जिन के द्वारा क्रम क्रम से आठ अवस्थाओं में परिवर्तित होकर सृष्टि की उत्पत्ति हुई है। अर्थात् अत्यन्त सूक्ष्म त्रगुणमयी प्रकृति कुछ स्थूल होकर प्रथम जिस अवस्था में परिवर्तित हुई उसका नाम महत्तत्व है। इसी प्रकार

क्रम क्रम से स्थूल होकर तृतीय अवस्था उसकी अहंकार। पुनः पंच तन मात्रायें यानी रूप, रस, गन्ध स्पर्श और शब्द पुनः ग्यारह इन्द्रियां अर्थात् आंख, कान, नाक, जिभ्या, त्वचा यह पांच ज्ञान इन्द्रियां और हाथ, पांव, जिभ्या, गुदा और मूत्र इन्द्री यह पांच कर्म इन्द्रियां तथा ग्यारहवां मन है। पुनः और स्थूल होकर पंच महाभूत बने यानी गन्ध से पृथ्वी, रससे जल, रूप से तेज, स्पर्श से वायु और शब्द से आकाश बना इन पंचभूतों द्वारा सब प्रकार की सृष्टि उत्पन्न हुई। प्रकृति के चौबीस गुण यह हैं १ शब्द २ रूप ३ रस ४ गन्ध ५ स्पर्श ६ संख्या ७ प्रमाण ८ प्रत्यक्ष ९ संयोग १० वियोग ११ परत्व १२ अपरत्व १३ द्रवत्व १४ स्नेह १५ बुद्धी १६ सुख १७ दुख १८ इच्छा १९ द्वेश २० प्रयत्न २१ धर्म २२ अधर्म २३ संस्कार ( २४ प्रकृति )।

सांख्यने सृष्टि में प्रकृति और पुरुष केवल दो पदार्थ माने हैं तीसरा नहीं तथा कुछ ईश्वर के गुण जीव में और जीव के गुण प्रकृति में सम्मिलित माने हैं। गीता का मत भी इसी प्रकार का है उसके मत से (१) प्रकृति अत्यन्त सूक्ष्म (२) महत्तत्व किञ्चित स्थूल (३) अहंकार जानने योग्य (४) अग्नि (५) वायु (६) जल (७) पृथ्वी यह सात प्रकृति के रूपान्तर हैं और चैतन्यता उसकी शक्ति है जिसके उत्तम और मध्यम अर्थात् ईश्वर और जीव दो भेद हैं विशुद्ध ज्ञान के द्वारा जीव ही ईश्वर बन जाता है। और सांख्य दर्शन जीवकी इसी अवस्था

का नाम मोक्ष बतलाताहै । अन्य दर्शनों का भी मोक्ष के विषय में यही मत है और प्रत्येक दर्शन वा मत के द्वारा जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष ही माना गया है ।

दूसरा पाताञ्जल कृत योग दर्शन है । इसका मत यह है कि ईश्वर सब जगत का आदि कारण है उसीकी उपासना द्वारा जीव को मोक्ष प्राप्त होसकती है ।

तीसरा गौतमकृत न्याय दर्शन है । यह दर्शन तर्क सिद्धिवातों को मानता है और तर्क के सोलह भेद बतलाता है जिनके द्वारा ज्ञानकी प्राप्ति होसकती है । नाम उनके १प्रमाण, २ प्रमेय, ३ शंसय, ४ प्रयोजन, ५ दृष्टान्त, ६सिद्धान्त, ७ अवयव, ८तर्क, ६ निर्णय, १० वाद, ११ जल्प, १२ वितण्डावाद, १३हेत्वाभास, १४ छल १५ जातिनिग्रह १६ समान निग्रह हैं । इस दर्शन के मतानुसार सृष्टि पर्माणुओं से बनी । यह परमाणु अनादि और सृष्टि के उपादान कारण हैं और ईश्वर जगत् का निमित्त कारण है । पूर्ण ज्ञान के द्वारा जीव को मोक्ष प्राप्त होती है और दुखों के मूलच्छेद का नाम मोक्ष है ।

चौथा दर्शन कणादि कृत वैशेषक है । यह दर्शन सृष्टि की उत्पत्ति को अत्यन्त सूक्ष्म और अनादि परमाणुओं के द्वारा स्वाभाविक मानता है और तत्व ज्ञान के द्वारा मोक्ष का पाना यद्यपि स्वीकार करता है परन्तु सम्बन्ध उसका ईश्वर के साथ होना स्वीकार नहीं करता । इसलिये ईश्वर का माना जाना

इसका नाममात्रही है। इसका मत सांख्य दर्शन से अधिक मिलता है।

पांचवां दर्शन जैमिन कृत पूर्व मीमांसा है जिस में वेदानुकूल कर्म करने की शिक्षा दीगई है। यह दर्शन ईश्वर जीव प्रकृति तीनों को अनादि मानता है। और वेदानुकूल आचार व्योहार करने की शिक्षा प्रदान करता है। सातवींसदी में कुमारिलभट्ट ने वौद्ध मत के विरुद्ध इसीमतका प्रचार कियाथा।

छठा दर्शन व्यास कृत उत्तर मीमांसा है इसका नाम वेदान्तदर्शन भी है। इसका सिद्धान्त यहहै कि जीव ईश्वरकाही अंश है कोई प्रथक वस्तु नहीं और प्रकृति ईश्वरकीही शक्ति है वास्तव में कोई स्थूल पदार्थ नहीं। जीव और प्रकृति का ब्रह्म से प्रथक प्रथक भाषित होना केवल भ्रम है। यह भ्रम जीव को अपनी अपूर्ण अवस्था में प्राप्त होता है। परन्तु पूर्ण ज्ञान के उत्पन्न होजाने पर जीव की शक्ति बढ़ती और अपने पूर्ण अंश अर्थात् ब्रह्म में सम्मिलित होजाने से उसका यह भ्रम दूर होजाता है। सन् ई०, की आठवीं शताब्दी में शङ्कराचार्यजी ने इसी मत के द्वारा वौद्ध मति के प्रकृतिवाद का खण्डन किया था।

उक्त षट् दर्शनों के अतिरिक्त बौद्ध, जैन और चारूवाक, मत सम्बन्धी तीन दर्शन अन्य भी हैं विवरण उनका नीचे दियाजाता है।

बौद्ध दर्शन महात्मा बौद्ध के मतानुसार है जिनका जन्म सन ईसवी से पांचसौ ससठ वर्ष प्रथम हुआ था। यह मत केवल जीव और प्रकृति को मानता है ईश्वर को नहीं। और अहिंसा, इन्द्रियदमन, सुखत्याग वा परोपकार को निर्वाण अथवा मुक्ति का साधन ठहराता है। प्रत्यक्ष और अनुमान केवल दो प्रमाणोंको मानता है। शब्दादि अन्य छह प्रमाणों को नहीं। यद्यपि सब प्रमाण आठ मानेजातेहैं। १प्रत्यक्ष,२ अनुमान, ३ उपमान, ४ शब्द, ५ एतिह्य (इतिहास), ६ अर्थापत्ति (आशय) सम्भव ७ अभाव ८।

दूसरा दर्शन जैन मत का है। इस के निर्माणकर्ता पारसनाथजी मानेजाते हैं जो सन ईसवी से छहसौ पचास ६५० वर्ष प्रथम अर्थात् बौद्धजी से भी तिरासी ८३ वर्ष प्रथम उत्पन्न हुये थे। परन्तु लोक मत के अनुसार यह मत बौद्धमत कीही एक शाखा है। यह मत भी ईश्वर के अस्तित्वको स्वीकार नहीं करता संसार को अनादि मानता, अहिंसा को धर्म्म ठहराता और अज्ञानता से मुक्त होकर जीव का मोक्ष पाना निश्चित करता है। इसके भी स्वेताम्बरी और दिगम्बरी दो बड़े सम्प्रदाय हैं परन्तु सब प्रकार के मिलकर ८४ चौरासी हैं। इनका साहित्य विस्तृत है परन्तु प्रकाशित अधिक नहीं।

तीसरा दर्शन चारुवाक मतका है इस मत के निर्माण करता कोई प्राचीन पुरुष बृहस्पतिजी हुये हैं। यह मत भी ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता और पारलौकिक

अवस्था को भी नहीं मानता केवल संसारको मानताहै जिसका सदैव काल से इसी प्रकार का चला आना बतलाताहै ।

तत्व विज्ञान में हिन्दुओं ने सृष्टि के मध्य जो अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी और आकाश केवल पांच प्रकार के तत्व मानेहैं वे यद्यपि तत्व नहीं किन्तु तत्वों के रूपान्तर हैं, परन्तु हाल के वैज्ञानिकों द्वारा मानीहुई संख्या उनकी स्थिर नहीं रहती । प्रथम लग भग साठ के थी । अब बढ़कर नब्बे तक पहुँच गई है तथा संभव है कि यह वस्तुयें जो इस समयमें तत्व मानी जातीहैं कुछ समय के पश्चात तत्व मानी न जावें, क्योंकि प्रकृति के अत्यन्त शूक्ष्म कण जो इस समयमें इलेक्ट्रन्स (Electrons) बोले जातेहैं उनके मध्य केवल दो ही प्रकार के भेद पाये जाते हैं १ऋण विद्युत्कण Electrons । २धनविद्युत्कण Protens जिनके संयोग वा वियोग से सृष्टि के पदार्थ बनते बिगड़ते हैं परन्तु वास्तव में जितने प्रकार के तत्व वा गुण सृष्टि के मध्य पाये जाते हैं वे विद्युत् कणों में भी अवश्य विद्यमानहैं । सृष्टि के अनेक तत्त्व और गुण मनुष्य को इस समय तक ज्ञात नहीं हुये तथा भविष्य में भी किसी समय तक पूर्ण रूप से ज्ञात होने की सम्भावना नहीं । सम्भवता इसी कारण हिन्दू जाति के द्वारा सृष्टि के विषय में तत्वों के स्थान में उनके रूपान्तर माने गये हैं । जो सदैव माने जासकते हैं ।

अगले प्रकरण में हिन्दू जाति के कलाकौशल का वर्णन किया जाता है जिस पर जातियों की आर्थिक शक्ति निर्भर है ।

# आर्य्य जातिका विज्ञान व कलाकौशल

पिछले पृष्ठोंमें आर्य्य जातिके केवल संस्कृत साहित्य का वर्णन किया गया है परन्तु इसके ज्ञान विज्ञान व कलाकौशल का नहीं। सम्प्रति काल की अवनत अवस्था के प्रतिकूल इस जाति की प्राचीन तम उन्नति अवस्था का ध्यान में लाना यद्यपि अति कठिन है परन्तु इसके लिखे प्राचीन तम ग्रन्थों वा निर्माणकृत वस्तुओं पर ध्यान देने से निःसन्देह पाया जाता है कि संसार की सब जातियों में से उन्नति के पथ पर प्रथम पग इसी जाति का आगे बढ़ा और संसार के मध्य ज्ञान का प्रकाश इसी के द्वारा उत्पन्न हुआ तथा इसी का प्रकाश पाकर यद्यपि ईरानी, यूनानी इत्यादि अन्य जातियां भी आलोकित हुईं परन्तु प्रकाश उनका अधिक समय तक स्थिर न रहसका और इतनी अधिक विलीन हुईं कि संसार के मध्य अस्तित्व भी उनकी जातीयता का शेष न रहा। संसार के रङ्गमंच पर जातियों की उन्नति वा अवनति का अभिनय सदैव कालसे इसी प्रकार होता चला आया है और भविष्य में भी इसी प्रकार होता रहेगा। क्योंकि अनन्त काल तक एकही अवस्था में रहना किसी जाति के प्रति संभव नहीं। कारण जातियों की उन्नति वा अवनति के अत्यन्त सूक्ष्म और अधिक अंश तक उनके अधिकार से बाहर हैं। जातियां अनेक शताब्दियों के उत्कट परिश्रम से उन्नति के शिखर पर चढ़तीं तथा सुख ऐश्वर्य

का जीवन प्राप्त करती हैं परन्तु पग उनका उन्नति के पथ पर अधिक समय तक स्थिर नहीं रहता और अवनत होना उनका अल्प काल में ही प्रारम्भ हो जाता है। जातियों का इतिहास उनके उत्थान और पतन का ही इतिहास है और कारण उनकी उन्नति वा अवनति के जो इतिहासों द्वारा प्रकट किये गये हैं शाखा रूप हैं, मूल कारण यही है, कि जातियोंके हृदय में उन्नति का भाव जब प्रबल रूप से उत्पन्न होता है किसी न किसी अंश तक उन्नति प्राप्ति करती हैं और भाव के शिथिल होजाने पर पुनः अवनति अवस्था उनकी प्रारम्भ होजाती है। मिश्रानी, ईरानी, यूनानी और मुहमडन इत्यादि उन्नत होने वाली जातियों में से कोई जाति पांचसौ वर्ष से अधिक उन्नति अवस्था में न रह सकी। संसार में अस्तित्व भी उनका शेष न रहा इसलिये प्रत्येक जाति के लिये इसकी अधिक आवश्यकता है कि वह अपने हृदय में उन्नति का भाव सदैव जागृत रक्खे और अपने विरुद्ध उत्पन्न होने वाले कारणों पर निरन्तर ध्यान देती रहे।

संसार के रङ्गमंच पर हिन्दू जातिका अभिनय यद्यपि समाप्त हो चुका परन्तु संसार की जिस अवस्था में तथा जितने अधिक समय तक इसने अभिनय अपना प्रकट किया वह अत्यन्त सराहनीय है। मनुष्य की सृष्टि भूगोल पर जब पशुओं के समान जीवन व्यतीत कर रही थी और सर्वत्र

अज्ञान का अन्धकार छाया हुआ था आर्य्य जाति ने केवल अपनेही बुद्धि बल से अनेक विद्याओं के अंकुर उत्पन्न किये हैं। और चौंसठ प्रकार के कलाकौशल भी इसके अधिक प्रसिद्ध रहे हैं। इसकी संस्कृत भाषा जिसके द्वारा साहित्य इसका रचा गया संसार के साहित्य की प्रथम तथा पूर्ण भाषा है जो किसी अन्य भाषा की सहायता पाकर उत्पन्न नहीं हुई किन्तु योरोप वा एशिया की अनेक भाषाओं में, स्वयम् इसी के अनेक शब्द विद्यमान पाये जाते हैं जो इसके प्रथम तथा अधिक विस्तृत होने का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं और मुहमडन शासन काल से प्रथम जितना, अधिक साहित्य इस जाति के द्वारा लिखा गया है, दोसौ वर्ष पूर्व तक किसी अन्य जाति के द्वारा लिखा नहीं गया तथा इसके वेद वा दर्शन शास्त्रों की रचना जिस प्रकार की शूक्ष्म और सारगर्भित गद्य के द्वारा हुई है संसार के मध्य उपमा उसकी प्राप्ति नहीं होती। ज्ञान विज्ञान की अनेक शाखाओं पर इसने अधिक प्रकाश डाला है और अपने समय की प्रत्येक आवश्यकता पर इसने अधिक ध्यान दिया है। धर्म और नीति सम्बन्धी शास्त्र इसका अधिक उपयोगी तथा अधिक विस्तृत है जो अनेक स्मृतकारों वा नीतिकारों द्वारा सम्पादन हुआ और गणित वा ज्योतिष विद्याओं में हिन्दू इतने अधिक उन्नत हुये हैं कि सम्पूर्ण पश्चिमी संसार के शिक्षक यूनानियों को भी अधिक

अंश तक इनही के रचे ग्रन्थों द्वारा ज्ञानकी प्राप्त हुई है। पुराणों के मध्य यद्यपि भूगोल मिश्रित इतिहास इसका अधिक पाया जाता है। परन्तु क्रम बद्ध वा समय सूचक न होने के कारण इस नवीन युग में वह इतिहास माना नहीं जाता और प्राचीन कविशैली के अनुसार अलंकृत भाषा द्वारा लिखा गया है इस कारण सम्प्रति काल के आलोचकों को वास्तविक ज्ञान उनका प्राप्त नहीं होता। बौद्धधर्म की स्पर्द्धा के कारण यद्यपि शारीरिक (सर्जरी) विज्ञान इसका नष्ट हो गया परन्तु रोग निदान वा औषधि ज्ञान इसका इस समय में भी विदेशी चिकित्साओं की अपेक्षा अधिक उपयोगी है और अधिकांश नगर निवासियों के अतिरिक्त ग्रामों की निवासी नव्वे प्रतिशत जनता केवल इसी के आधार पर निर्भर रहती है तथा देशके मध्य यही चिकित्सा दिन दिन अधिक उन्नति होती जारही है। जलयान, वायुयान, वा रेल, मोटर, इत्यादि के समान भूमि पर शीघ्र चलने वाले विमान तथा भयानक प्रकार के अस्त्र शस्त्र वा अनेक प्रकार के यंत्र जो सम्प्रति काल में विद्यमान पाये जाते हैं संभवता इस देश के मध्य अधिक अंशतक प्राचीन काल में भी विद्यमान थे क्योंकि जाति के लिखे प्राचीन ग्रन्थों के द्वारा प्रमाण उनका प्राप्त होता है परन्तु महाभारत युद्धके पश्चात् देश के मध्य अस्तित्व उनका ज्ञात नहीं होता। हिन्दुओं के निर्माण कृत बड़े बड़े प्रासाद, दुर्ग, पुल, मन्दिर इत्यादि जो इस

समय जीर्ण वा ध्वस्त अवस्था में शेष पाये जाते हैं हिन्दू जाति की विशाल और उत्तम निर्माण कलाका प्रमाण देतेहैं। अर्थात इस समय का विस्तृत कला कौशल केवल वर्तमान युगकेही प्रयत्नका फल नहीं किन्तु क्रम क्रम से अनेक जातियोंके प्रयत्न द्वारा उन्नत हुआ जिस में हिन्दुओं से प्रथम वा अधिक भाग किसी अन्य जाति का पाया नहीं जाता।

अठारहवीं शताब्दी तक इस देश का शिल्प अन्य जातियों की अपेक्षा अधिक रहा और सोना, चांदी, लोहा, लकड़ी, मिट्टी, पत्थर, सन, ऊन, रेशम, रुई, सम्बन्धी अनेक प्रकार की वस्तुयें यहां से बनकर पश्चिम के देशों को इङ्गलिस्तान तक जातीरहीहैं। सुनहरी और रंगीन चित्रकारी के नमूने इस समय में भी जर्मन महासमर से प्रथम योरोप और अमेरिका के निवासी अधिक मूल्य देदेकर यहां से अपने देशों को ले गये हैं। तथा अनेक प्रकार की वस्तुयें वा अद्भुत मूर्तियां इस देश में वा इङ्गलिस्तान की चित्र शालाओं में विद्यमान हैं। पत्थर वा लोहे के बड़े बड़े स्तम्भ जो इस समय देश के अनेक स्थानों में खड़े पाये जाते हैं उनके ढालने ऊपर चढ़ाने वा दूर ले जाने की कला से भी हिन्दू अच्छे प्रकार से परचित थे। सूती ऊनी वा रेशमी वस्त्र अत्यन्त स्वल्प और स्वच्छ एकसौ वर्ष पूर्व तक इस देश से बनकर योरोप के देशों को जाते रहे हैं, परन्तु ईस्टेन्डिया कम्पनी के शासन काल में उसकी व्यापारिक

स्पर्द्धा के कारण इस देश की शिल्प कला पूर्ण रूप से नष्ट होगई और जाति की औद्योगिक शक्ति केवल कृषि तक ही सीमित रह गई। इस समय में देश के मध्य जो कार्य होते हैं विदेशी यन्त्रों द्वारा किये जाते हैं स्वयम् अपने बनाये यन्त्रों द्वारा नहीं। यह हिन्दू जातिकी बड़ी अयोग्यता तथा आर्थिक पराधीनता है। क्योंकि इस समय में किसी जाति के लिये अपने को सुरक्षित रखने वा जीवन निर्वाह कर सकने के लिये अर्थ विज्ञान, शिल्पकला, और युद्ध कौशल में कुशल होना नितान्त आवश्यक है। इसी कारण संसार के मध्य बड़े बड़े आविष्कारों तथा सैनिक उपकरणों की सृष्टि हुई है, क्योंकि उक्त कार्य्यों में कुशल हुये बिना इस समय में किसी जातिका सुखी वा स्वतन्त्र रह सकना कदापि संभव नहीं। संसार प्रत्यक्ष रूप से युद्ध स्थल है। यहां शक्ति का ही नाम जीवन है। आकाश में जिस प्रकार से बड़ा पक्षी छोटे पक्षी को मारखाता। जलमें बड़ी मछली छोटी मछलियों का आहार करतीं तथा भूमि पर सिंहादि सबल जीव निर्बल जीवों का शिकार करतेहैं उसी प्रकार सबल जातियां भी निर्बल जातियों को दबा लेतीं और उनकी धन सम्पत्तिवा सुख स्वतंत्रता का अपहरण करलेती हैं। संसार में सदैव काल से यही प्रथा चली आई है। इसी कारण सचेत जातियां अपनी रक्षा के प्रति न केवल स्वयम् संघटित होकर रहतीं किन्तु अन्य जातियों से भी अपना मित्र सम्बन्ध रखतीहैं।

जिस जातिके मध्य अपनी जातीय आवश्यकताओ के पूरा करने और शत्रु जातियों से अपने को सुरक्षित रखने की शक्ति नहीं वह जाति वास्तव में जाति नहीं है किन्तु मेले में एकत्रित हुई भीड़ के समान है।

हिन्दू जाति अधिक समय से इसी अवस्था में है। यह अत्यन्त प्राचीन तथा संस्कृत जाति जो अधिक समय तक संसार के मध्य वैभव सम्पन्न बनी रही और अपने ज्ञान विज्ञान वा धर्मनीति के द्वारा संसार को शिक्षा प्रदान करती रही इस समय में गुण, धन, विद्या और बुद्धि इत्यादि सब प्रकार की शक्तियों से रहित है तथा अधिक समय से पराधीन भी है। परन्तु संसार की अन्य जातियों के समान इसने अपनी जातीयता का परित्याग नहीं किया और दृढ़ता पूर्वक अपनी धर्म नीति को सुरक्षित रक्खा, इसी कारण आज पर्यन्त धर्म नीति इसकी जीवित बनी हुई है। जाति के प्रत्येक धनी गुणी वा राजा सरकार का यह परम कर्तव्य है कि इस अपनी अधिक प्राचीन शक्ति हीन जाति का जीर्णोद्धार करे अर्थात् सन्तानों की शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों को बढ़ावे। इसके मध्य शिल्प कला और युद्ध कौशल की शिक्षा का प्रचार करे। भूमि की उपज को बढ़ावे। खनिज पदार्थों का अनुसन्धान करे। बड़े बड़े संघों का निर्माण करके कलाकौशल और व्यापार को उन्नति अवस्था पर पहुँचावे। तथा शिक्षा द्वारा जातिकी अज्ञानता निर्बलता वा

निर्धनता के दूर करने का अधिक प्रयत्न किया जावे। उक्त लाभों के प्रति केवल सरकार पर निर्भर रहना उचित नहीं; यद्यपि सहायता लिया जाना आवश्यक है और कौंसिलों में इस प्रकार के बिल प्रस्तुत लिया जाना उचित है जिनके द्वारा जातिको उपयोगी शिक्षा प्राप्तिहोवे और उद्योग धन्धों की उन्नति होसके।

हिन्दु जाति के मध्य जातिभेद अधिक है और सम्प्रति काल में विरोध इसका किया जाता है इस लिये वर्णन इसका अगले प्रकरण में किया जाना आवश्यक है।

# हिन्दुओं का जाति भेद।

जातियों के मध्य श्रम भेद का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। मनुष्यों की पृथक पृथक रुचि, योग्यता और सुविधा के अनुसार स्वयम् उत्पन्न होता है। किसी जातिके मध्य बलपूर्वक किया नहीं जासकता इसी प्रकार से आर्य्य जाति के मध्य भी यह श्रम भेद स्वयम् उत्पन्न हुआ बल पूर्वक किया नहीं गया। प्रथम समय में आर्य्य जाति के द्वारा जो जो ग्राम वा नग्र बसे वे अपनी सुबिधा और स्वतन्त्रता के प्रति प्रत्येक प्रकार के मनुष्यों की आवश्यकता रखतेथे। क्योंकि उस समय में जाति के विचार अथवा देश की अवस्था इस प्रकार की न थी जो इस समय पाई जातीहै। प्रत्येक ग्राम वा नग्र अपनी आवश्यकताओं को स्वयं पूरा करताथा अन्य पर निर्भर न रहताथा। इसलिये प्रत्येक ग्राम के मध्य प्रत्येक प्रकार के काम करने वाले मनुष्य एकत्रित हुये जो क्रमानुसार अनेक पीढ़ियों तक एकही प्रकारका काम करतेरहे और ग्राम की उपज से अपना भाग पाते रहे। इस कारण उनका काम करना वा भाग पाना पैतृक होगया जो इस समय तक स्थिर बनाहुआ है। तथा अगणित पीढ़ियों तक एकही प्रकार का काम करते रहने के कारण प्रत्येक प्रकार के काम करनेवाले मनुष्यों का जीवन भी विशेष प्रकार का होगया अर्थात् उनकी रहन सहन योग्यता और सभ्यता अपने अपने

कार्य्य के अनुसार विशेष प्रकार की बनगई। इस कारण कुछ समय पश्चात् कार्य्य भेद का विचार जाति भेदमें बदलगया। यद्यपि अधिक समय तक इस विचार को पूर्णरूप से दृढ़ता प्राप्त नहीं हुई। नलिन जातियों के अतिरिक्त प्रत्येक वर्ण का मनुष्य अन्य वर्ण का बनाया भोजनकरसकता और अन्य वर्णवाली स्त्री के साथ सम्बन्ध करके जातिच्युत नहीं समझा जाताथा। परन्तु बौद्ध धर्म के द्वारा जब वर्ण भेद के विरुद्ध आन्दोलन उत्पन्न हुआ और वर्ण भेद का विचार अनुचित माना गया इस कारण जाति के द्वारा इस जाति भेद की नीति को दृढ़ता प्रदान करना आवश्यक समझागया। जिसके अनुसार प्रत्येक वर्ण वा जातिका रोटी बेटी सम्बन्ध केवल अपनीही जाति के साथ सीमित रहा जाति के बाहर पांव रखना जातिच्युत का कारण मानागया। इस नीति के द्वारा जाति की रक्षा केवल बौद्धाघातसे ही नहीं हुई किन्तु पश्चात् में इसलाम के आघात सेभी हुई जिसका सुदीर्घ शासनकाल हिन्दूजातिके रक्त वा धर्म जाति के प्रति यम के समान घातक था।

आदि काल में आर्य्य जाति के मध्य ज्ञानोन्नति, देश प्रबन्ध, धनोपार्जन और श्रम शीलता के आधार पर केवल चार प्रकार के भेद माने गयेथे परन्तु जाति के अधिक बढ़ने, देश के मध्यदूर दूर तक जाकर बसने तथा अन्य जातियोंके देशमें आजाने वा मिलजुल कर अनेक सङ्कर जातियों के उत्पन्न होजाने पर

कार्य्य भेद, रक्तभेद वा स्थान भेद के विचार से इस जाति के मध्य क्रम क्रम से अगणित जातियां उत्पन्न होगईं जो इस समय में तीनसहस्र से भी अधिक मानीजाती हैं। जिनके मध्य परस्पर खान पान वा रक्त सम्बन्ध नहीं होता।

पश्चिमी जातियों के हृदय में देश भेद के अनुसार जाति भेद का विचार जो सम्प्रतिकाल में उत्पन्न हुआ हिन्दू जाति के मध्य प्राचीनकाल से ही चलाआता है और हिन्दूजाति ने जिस प्रकार से इसको ग्रहण किया वह अन्य जातियों के समान यद्यपि सरल वा सुविधा जनक नहीं परन्तु इसके द्वारा यह जाति अपने मध्य अन्य जातियों को लेकर भी अपने रक्त को प्रथक रखसकती इसलिये नीति इसकी युक्ति पूर्ण अवश्य पाईजाती है।

हिन्दू जाति के मध्य ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र चार वर्ण प्रथक प्रथक मानेजाते और इसी क्रम से वे सन्मानित भी कियेजाते हैं अर्थात् अपनी शिक्षा, स्वच्छता और सदाचारता के कारण ब्राह्मण सर्व श्रेष्ठ मानेजाते इस कारण उनका बनाया भोजन अन्य सब वर्ण वा जातियां स्वीकार करती हैं परन्तु ब्राह्मण अन्य जातियों का बनाया भोजन स्वीकार नहीं करते। इसी प्रकार से चतुर्थवर्ण की सब जातियां यद्यपि अपने वर्ण के मध्य परस्पर भोजन सम्बन्ध नहीं रखतीं परन्तु सवर्ण जातियों का बनाया भोजन करसकती हैं। जिसका प्रयोजन अपने श्रम

और रक्त का प्रथक प्रथक रखना है, क्योंकि रोटी भेद के विना रक्त भेद का स्थिर बनारहना संभव नहीं। और संसार में प्रत्येक व्यक्ति वा जातिका मान्य उसके बल अनुसार किया जाता है इस कारण जाति के मध्य केवल श्रम बल रखनेवाली शूद्र जातियों का स्थान अन्तिम मानागया। उनकी अपेक्षा श्रम बल तथा धन बल रखनेवाली वैश्य जातियों का स्थान अधिक ऊंचा माना गया। इसी प्रकार श्रम, धन तथा सैनिकबल रखनेवाली जातियो का स्थान और भी अधिक ऊँचा माना गया। परन्तु सम्पूर्ण जातिको सुव्यवस्थित रखनेवाली तथा शिक्षा प्रदान करनेवाली जातियों का स्थान सबसे अधिक ऊंचा माना गया है। अन्य जातियों के मध्य जाति भेद यद्यपि इस प्रकार का नहीं परन्तु व्यक्तिगत आदर उनके मध्यभी इसी प्रकार से किया जाता है।

हिन्दू जातिके मध्य रोटी, वेटी सम्बन्धमें वर्ण और वीर्य की उत्तमताका विचारकिया जाना उचित समझा जाता है। यदि इस बात का विचार न किया जाता तो यह जाति जो अधिक समय से पराधीन अवस्था में है अपने रक्त वा धर्मनीति की दृष्टि से भी गिरी पाई जाती और दूध में जल के मिलजाने से जिस प्रकार दूध का आदर्श नष्ट हो जाता है उसी प्रकार सब जातियों के मिलकर एक जाति बन जाने से सवर्ण जातियों का आदर्श नष्ट हो जाता। तथा रक्त के प्रथक न रहने से अपनी

जाति का अभिमान भी इसके हृदय में स्थिर नहीं रह सकता। इसलिये जाति की इस नीति का विरोध जो सहस्रों वर्ष के पश्चात् इस समय में उत्पन्न हुआ है कारण इसका जाति की भूल या अनीति नहीं किन्तु पश्चिमी शासन का प्रभाव है जो मुसलमानों के शासन काल में भी हुआ जिसके फल स्वरूप हिन्दू जाति के वेष भाषा में अन्तर उत्पन्न हो गया। लक्षो मनुष्य मुसलमान बनगये और लक्षों व्यक्ति कबरों इत्यादि को जने लगे। उक्त नीति के अनुसार प्रत्येक जाति खानपानादि के सम्बन्ध से यद्यपि पृथक पृथक है और प्रत्येक मनुष्य अपनी जाति के ही नाम से व्यक्त किया जाता है, परन्तु जाति के मध्य यह भाव किसी समय में उत्पन्न नहीं हुआ कि किसी जाति का मनुष्य अपनी आर्थिक उन्नति न कर सके, शिक्षा न पास के और गुण के अनुसार उसका आदर न किया जावे। इस जाति के मध्य अनेक शूद्र अधिक प्रसिद्ध हुये हैं। और इस समय में भी अनेक शूद्र अधिक धनवान पाये जाते हैं। तथा अनेक मनुष्य यद्यपि ब्राह्मण वर्ण नहीं हैं, परन्तु अपनी योग्यता के कारण उत्तम ब्राह्मणों की अपेक्षा भी अधिक सन्मानित किये जाते हैं।

ऊंच नीच का भाव किसी न किसी दृष्टि से प्रत्येक जाति के मध्य पाया जाता है। पश्चिमी जातियों के मध्य यह भेद धन की दृष्टि से माना जाता परन्तु हिन्दू जाति के मध्य श्रमकी

दृष्टि से है। हिन्दू जाति के मध्य धनवान मनुष्य अपनी जाति वाले निर्धन मनुष्य के साथ जो समानता का व्योहार करता है वह भाव गोरी जातियों में नहीं। गोरी जातियां न केवल रंगीन जातियों को ही तुच्छ दृष्टि से देखतीं किन्तु आर्थिक दृष्टि से अपने मध्य भी समानता का भाव नहीं रखती हैं इसलिये इनकी नीति हिन्दू जाति की अपेक्षा उत्तम प्रकार की नहीं है।

हिन्दू जाति के मध्य ब्राह्मण वर्ण के विशेष आदर किये जाने का कारण केवल उनकी विशेष शिक्षा वा धर्मज्ञता नहीं, किन्तु जाति हित के लिये अपने सुख ऐश्वर्य का त्यागन किया जाना भी है। क्योंकि धन, सम्पत्ति और देशाधिकार जो आदर के वास्तविक स्थान हैं ब्राह्मणों के अधिकार से सदैव बाहर रहे। उनका त्यागन करके ब्राह्मणों ने सहस्रों वर्ष पर्यंत जाति की अधिक सेवा की है। इसके प्रति केवल धन, सम्पत्ति और देशाधिकार को ही नहीं त्यागा किन्तु अधिक अंश तक गृहसुख का भी त्यागन किया। प्राचीन कालमें प्रत्येक ब्राह्मण के प्रति गृह से बाहर रहकर शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य था और जातिको शिक्षित किया जानाभी इसी वर्णके प्रति उचित माना जाता था। इस कारण बहुसंख्यक ब्राह्मण विवाह नहीं करते अथवा अधिक आयु के प्राप्त हो जाने पर विवाह करते थे और वृद्धावस्था के प्रारम्भ हो जाने पर पुनः गृहजीवन त्याग कर वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार कर लेते थे। जिसके द्वारा न केवल

अपने ही ज्ञान की वृद्धि करते किन्तु जाति के बालकों को भी शिक्षा प्रदान करते थे। प्रथम समय मे ब्राह्मणों के द्वारा जो अनेक प्रकार के वैज्ञानिक तथा भौतिक आविष्कार हुये हैं लाभ उनका केवल इसी जाति को प्राप्त नहीं हुआ किन्तु संसार की अन्य जातियो को भी प्राप्त हुआ है। इस समय में अन्य वर्णों की अपेक्षा यह वर्ण जो धन सम्पत्ति हीन अधिक पाया जाता है विशेष कारण इसका यही है कि इस समय तक धनोपार्जन की ओर ध्यान इसका विशेष प्रकार से आकृष्ट नहीं हुआ। इसलिये ब्राह्मणों के आदर के प्रति अपने हृदय में ईर्षा उत्पन्न करना अथवा धनहीन वा अनभिज्ञ समझकर इनका निरादर करना हिन्दू जाति की केवल असभ्यता नहीं किन्तु कृतघ्नता भी है।

कुछ जातियां भङ्गी, चमार, खटिक, धानुक, कञ्जर, पासी इत्यादि जो मलिन आहार करतीं, मलिन अवस्था में रहतीं औरमलिन प्रकारका कार्य्य करतीहैं, अपनी शुद्धता, सभ्यता वा रक्त रक्षा के प्रति उनके निकट बसना वा अपनी जाति के समान उनके साथ निकट का सम्बन्ध रखना सवर्ण जातियों के द्वारा उचित माना नहीं जाता। इसका प्रयोजन वास्तव मे उनका वहिष्कार करना वा पृथक समझना नहीं। किन्तु उनकी मलीनता वा असभ्यता से अपनी स्वास्थ्य वा संस्कृत का सुरक्षित रखना है। जिसका सुरक्षित रह सकना इसी प्रकार संभव है कि

साधारण अवस्थाओं में सर्वथा उनसे पृथक रहे। बहुधा प्रश्न किया जाता है कि मलिन जाति वाला व्यक्ति जब ईसाई वा मुसलमान बन जाता है तब उसी प्रकार का व्योहार उसके साथ क्यों नहीं किया जाता? परन्तु यह प्रश्न कुछ महत्व नहीं रखता। क्योंकि जातिके जो व्यक्ति ईसाई वा मुसलमान बनजाते हैं। वे अपनी जाति वा पेशा को भी छोड़ देते हैं। इस कारण जाति का व्योहार उनके प्रति किञ्चित बदल जाता है। यदि वे अपने पेशे को नहीं छोड़ते तो जाति का व्योहार भी उनके प्रति उसी प्रकार का बना रहता है। और मलिन अवस्थाओं में गृहके मनुष्यों से भी उसी प्रकार का व्योहार किया जाता है जो मलिन जातियों के साथ होता है। इस प्रश्न की अधिक व्याख्या इस स्थान पर नहीं की जासकती। वास्तव में हिन्दू जाति शूद्र जातियो को अपने से पृथक नहीं समझती और अनुचित व्योहार उनके साथ नहीं करती परन्तु अपनी स्वास्थ्य वा सभ्यता की रक्षा के प्रयोजन से घनिष्ठ सम्बन्ध उनके साथ नहीं रखती है। उनके हृदय में जिस समय अपनी अवस्था के उत्तम बनाने का भाव उत्पन्न होगा। संभवता जाति का दृष्टि-कोण भी उनके प्रति इस प्रकार का न रहेगा। जिस प्रकार से एक ही गृह के मध्य दो विपरीति कार्यों को एक ही स्थान में नहींकरते वा दो विपरीति वस्तुओंको एकही स्थान में नहीं रखते इसी प्रकार एक देश में भी सामाजिक दृष्टि से दो विपरीति

प्रकृति वाली जातियों का संयुक्त होकर रहना उचित माना नहीं जासकता। अन्य देशोंके मध्य यदि जाति भेद नहीं है तो उनके मध्य जातियों का प्रकृति भेद भी इस प्रकारका नहीं है। उनकी सम्पूर्ण जन संख्या लगभग एकही अवस्था में रहती और एकही सभ्यता का पालन करती है। परन्तु यह देश अधिक बड़ा है और जातियों की विचित्रशाला है। इसके मध्य इस युग की सभ्यतम् जातियों से लेकर आदम के समय तक की जातियां विद्यमानहैं, जिनके प्रति समानता का भाव रखना सम्भव नहीं। इस प्रश्न का सम्बन्ध शरीर की अपेक्षा मनसे अधिकहै। जिस प्रकार से लज्जा का अनुभव प्रत्येक मनुष्य को एक ही समान नहीं होता इसी प्रकार मलिनता का अनुभव भी प्रत्येक मनुष्य को एकही समान नहीं होता है। यह प्रश्न यदि किसी स्वच्छ वा स्वास्थ्य प्रिय अथवा वैज्ञानिकव्यक्तिके सन्मुख उपस्थित किया जावेतो वह अवश्यही हिन्दुओंकीइस नीतिको उचित मानेगा। कोई निष्पक्ष मनुष्य विरोध इसका न करेगा। परन्तु इस समय में बृटिश जाति के द्वारा प्रजातन्त्र शासन पद्धति के अनुसार देशाधिकार के प्राप्त होने की आशा जो प्रकट हुई है इसके फल स्वरूप देशके मध्य बसनेवाले अयोग्य वा अल्पसंख्यक समुदायों के हृदय में हिन्दू जाति के प्रति ईर्षा का भाव उत्पन्न हो गया है और इसी कारण देशके नव-शिक्षित व्यक्तियोंके द्वारा जातिभेद का मिटा देनाभी उचित समझा जाताहै कि देशकी सब जातियां

संघटित होकर रहें। इसके प्रति प्रथम विरोध मुसलमानों का है। जो यद्यपि देश की जन संख्या का प्रतिशत बाईस के हैं परन्तु कौंसिलों में वा शासनाधिकारों में हिन्दुओं से घट कर रहना सहन नहीं कर सकते और विशेषाधिकारों की प्राप्ति के लिये सरकार वा कांग्रेस दोनों को प्रसन्न रखते, हिन्दुओंके कभी मित्र कभी शत्रु बनते और समानता का प्रलोभन देकर चतुर्थवर्ण वाली जातियों को भी अपनी ओर आकृष्ट करने का अधिक प्रयत्न करते हैं। दूसरा दल अपनी जाति के ही नव-शिक्षित व्यक्तियों का है। जिनका ध्येय केवल स्वराज्य का ही प्राप्त करना नहीं किन्तु उपरोक्त मतानुसार जाति भेद को मिटा कर अछूतों वा मुसलमानों समेत सम्पूर्ण देश को पश्चिमी सभ्यताके सांचे में ढाल देना भी है। क्योंकि जाति के प्रधान वा कर्णधार केवल पश्चिमी शिक्षा पाने वाले अथवा पश्चिमी देशों की यात्रा करने वाले मनुष्य ही माने जाते हैं। जिनके हृदय में अपनी जातीय सभ्यता की अपेक्षा पश्चिमी सभ्यता के प्रति आदर का भाव अधिक है। यद्यपि देशाधिकार का प्राप्त करना और प्राप्त हो जाने पर उसका संचालन कर सकना केवल इन्हीं के अधिकार में है। अशिक्षित मनुष्य इसका संचालन नहीं कर सकते। परन्तु यह नीति उनकी जातिके लिये हानिकारकहै कि अपनी जातीय सभ्यता की ओर घृणा की दृष्टि रखते। कौंसिलों में इसके विरुद्ध एक्ट बिल प्रस्तुत करते। वर्ण विरुद्ध

विवाह करके जाति के सन्मुख उसका उदाहरण रखते और समाचार पत्रोंमेंभी इसी प्रकार के लेखों का प्रकाशन करतेहैं। जिनके द्वारा जनता के हृदय में अपनी सामाजिक सभ्यता के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न हो सकता है।

तीसरा विरोधी दल द्रवण वा असभ्य जातियों का है। जिनके मध्य यद्यपि शिक्षा वा योग्यता नहीं परन्तु देशाधिकार में भाग अपनी संख्यानुसार प्रथक चाहता है और अपने आचार विचारपर ध्यान न देकर संस्कृत जातियोंके साथ समानता का प्राप्त करना भी आवश्यक समझता है। यह दल अपनी अयोग्यता के प्रति हिन्दू जाति को ही दोषी ठहराता और इस दोषके प्रति प्राचीनतम संदिग्ध पुस्तकोंके प्रमाण प्रस्तुत करताहै। परन्तु एक सहस्र वर्ष का अन्तिम अनुभव जो प्रत्यक्ष प्रमाण है उसको स्वीकार नहीं करता। क्योंकि हिन्दू जाति जब लगभग एक सहस्र वर्ष से इस देश पर शासन अधिकार नहीं रखती। तब शिक्षा प्राप्त करने से रोका जाना उनका किस प्रकार संभव हुआ और वृटिश जाति के शासन काल में भी गत तीन सौ वर्ष तक शिक्षित वा उन्नत होना उनका किस कारण सम्भव न हो सका। सत्य होने पर भी सहस्रों वर्ष पूर्व का प्रमाण माना नहीं जा सकता। क्योंकि मध्य काल तक प्रत्येक देश अनेक छोटे राज्यों में बटा रहा और प्रत्येक राज्य देशाधिकार के प्रति अन्य राजाओं के साथ युद्ध करता रहा। परन्तु इस

समय में लगभग सब देश अपने अपने मध्य पूर्ण रूप से संघटित हैं और संघटित हो जाने का कारण उनके खान-पानादिका एकहोना नहीं किन्तु अपने समस्त लाभोंके प्रति देश की एक बड़ी शक्ति बन जाने का विचार है। क्योंकि खान पानादि का भेद अन्य देशों के मध्य प्रथम समय में भी न था तथापि अपने अपने मध्य अनेक भागों में बटे हुए थे और परस्पर विरोध की अग्नि से संतप्त रहते थे। इसलिए रोटी भेद जातियों के विरोध का कारण नहींहै और माना जाना इसका नितान्त भ्रम मूलक तथा प्रयोजनीय है। कुछ वर्णन इसका अगले प्रकरण में विशेष प्रकार से किया जाता है इसलिए इस स्थान पर अधिक लिखना आवश्यक नहीं समझा जाता।

जाति भेद का भाव प्रत्येक जाति के मध्य विद्यमान है। परन्तु व्योहार के प्रति विशेष नीति प्रत्येक जाति की प्रथक प्रथक है। अर्थात् हिन्दू जातिका जाति भेद रक्तभेद पर निर्भर है। परन्तु मुहमडन जातियों का जाति भेद धर्म भेद के और क्रिश्चियन जातियों का रंग वा देश भेद के अनुसार मानाजाता है। बृटिश जाति की नीति इस प्रकार की है कि अन्य देश में उत्पन्न हुआ स्वयम् अपनी जाति का व्यक्ति भी दूसरे प्रकार का माना जाता। इस कारण सन्तानों के प्रसव काल में सहस्रों मील दूर रहने वाले अङ्गरेजों को भी अधिक व्यय और कष्ट सहन कर के अपने देश को ही जाना पड़ता है। यदि प्रश्न

किया जावे कि यह नियम किस कारण रक्खा गया यदि न रक्खा जाता तो क्या बड़ी हानि होती, तो संभवतः उत्तर इसका यही प्राप्त होसकताहै। कि जिस प्रकारसे हिन्दुओंके मध्य जाति की विशेषता है इसी प्रकार से इङ्गलिश जाति के लिये अपने देश में उत्पन्न होने की विशेषता है। इसलिये हिन्दू जाति की सामाजिक सम्बन्ध में अन्य जातियों से और विशेष कर मलिन जातियों से प्रथक रहने की नीति अनुचित नहीं और जिस प्रकार का अनुचित व्योहार मुहमडन जातियों ने हिन्दू जातिके साथ किया अथवा क्रिश्चियन जातियों ने अस्ट्रेलिया, अफ्रीका, अमेरिका इत्यादि देशों के प्रथम निवासियों के साथ किया हिन्दू जाति ने द्रवण वा शूद्र जातियों के साथ नहीं। किया किन्तु हिन्दू जाति ने उनको अपने जातीय शरीरकाही अङ्ग माना। तथा सहस्रों वर्ष के मध्य किसी वर्ण वा जाति का विरोध हिन्दू जाति के मध्य उत्पन्न नहीं हुआ। और इस समय में जो उत्पन्न हुआ है। कारण इसका पश्चिमी जातियों की आश्चर्यजनक उन्नति का प्रभाव है। क्यों कि संसार में जिस जाति की शक्ति अधिक बढ़ती है अन्य जातियों के द्वारा उसी का अनुकरण कियाजाता है और उन्नति का मुख्य साधन उसी को मानाजाता है। भिन्न भिन्न काल में अनेक जातियां बौद्ध धर्म में अनेक क्रिश्चियन धर्म में और अनेक इसलाम धर्मसे केवल इसी कारण परिवर्तित हुईं जिन्होंने मृग तृष्णा के

समान यद्यपि उन्नत होनेवाली जातियों की धर्म नीति को स्वीकार कर लिया परन्तु उन्नति उनको उसी प्रकार की प्राप्त न होसकी। हिन्दू जाति के भी करोड़ों मनुष्यों ने बौद्ध धर्म को और करोड़ों ने इसलाम धर्म को स्वीकार किया परन्तु हिन्दुओं से अधिक उत्तम अवस्था उनको प्राप्त नहींहुई। क्योंकि जातियों की उन्नति उनके धार्मिक मन्तव्यों वा सामाजिक प्रथाओं पर निर्भर नहीं। किन्तु उत्तम् भावों वा उत्तम गुणोंपर निर्भरहै। जो उत्तम शिक्षा वा संस्कारो द्वारा उनके हृदय में उत्पन्न होसकते हैं। जिस जाति के हृदय में ज्ञान और बुद्धि का प्रकाश होता है वह जाति किसी अन्य जातिकी धार्मिक वा सामाजिक प्रथाओं का अनुकरण नहीं करती। किन्तु स्वयम् अपनेही विचारों का परिष्करण करतीहै। जिस प्रकारसे बृटिश और जापान जातियों ने अपने अपने मध्य अपने अपने समयमें किया। इस समय में हिन्दू जाति के मध्य यदि किसी प्रकारकी जागृति हुई है केवल अपनी पराधीनता का विचार है। अपने अधोगति के कारणों पर ध्यान देने का भाव इसके हृदय में उत्पन्न नहीं हुआ। जिस समय में किसी नेता द्वारा जाति के मध्य किसी प्रकार का आन्दोलन उत्पन्न होता है। अथवा कौंसिलों में किसी प्रकार का बिल प्रस्तुत कियाजाता है। देशकी प्रतिशत निन्यानवे जनता उसके प्रति अनभिज्ञ वा निरपेक्ष रहती है। शेष जनता जो भाग लेती है हानि वा लाभ की दृष्टि

से नहीं लेती किन्तु पक्षपात की दृष्टि से एक दल के साथ रहकर दूसरे दल का विरोध करती है। अर्थात् जाति की दृष्टि अपने हानि लाभपर नहीहै और पग इसका उन्नतिके पथसे अधिक दूर है; पथप्रदर्शकइसके पश्चिमी सभ्यताके उपासक हैं, इस कारण यह हिन्दूजाति क्रम क्रम से पश्चिमी सभ्यता की ओर बढ़तीजातीहै और जिसको हम अपनी उन्नति होना समझते हैं, वह वास्तव में उन्नति नहीं है किन्तु संसारव्यापी वैज्ञानिकयुग का चमत्कार है तथा पश्चिमी सभ्यता के साथ अपनी सभ्यता का परिवर्तन है। उन्नति का अर्थ जो वास्तवमें बुद्धि विज्ञानवा धन सम्पति का अधिक होना है इस समय तक हिन्दूजाति को विशेष प्रकार से प्राप्त नहीं और उन्नति की प्राप्ति के लिये जिन जिन उत्तम गुणों की आवश्यकता है जो उद्यम, उत्साह, सत्यनिष्ठा, चतुर्ता वा दूरदर्शिता इत्यादि अनेकप्रकार केहै और शिक्षा द्वारा उत्पन्न होसकते हैं इस जाति के मध्य उत्पन्न नहीं हुये।

हिन्दू जाति के मध्य यदि उत्तम गुणों का प्रादुर्भाव न हो तो देशाधिकार का प्राप्त होना भी इसकी उन्नति का कारण नहीं बनसकता किन्तु और भी अधिक दुखका कारण होसकता है। आर्य जाति का श्रेष्ठ रक्त और इसकी परम प्राचीन वैदिक सभ्यता जो केवल हमारेही हाथो में शेष बची हुई है इसका सुरक्षित रखना हमारा परम धर्म है और किसी प्रकार का आन्दोलन जो जातिके मध्य उत्पन्न हो उसके

हानि और लाभ दोनों पर दृष्टि रखना हमारेप्रति नितान्त आवश्यक है। इस समय में जातिके शिक्षित मनुष्य जो देशाधिकार के प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं हमारी जातीयता को भी बदलदेना चाहते हैं इस कारण इस स्थान पर कुछ लिखा जाना इसके विषय में भी उचित प्रतीत होता है।

प्राचीन काल में हिन्दू जाति के द्वारा इस देश का शासन प्रजातन्त्र पद्धति के अनुसार होता रहा है। उस समय में शासन के प्रति कोई राजा पूर्ण रूप से स्वतन्त्र न था। प्रजा के मतानुसार शासन किया जाता था और प्रजा की ओर से राजा की सभा में अनेक सभासद् नियत रहते थे जो उसको प्रत्येक प्रकार का मत प्रदान करते थे। परन्तु कुछ काल से जिसका कारण वा समय ज्ञात नहीं इस देश की शासन पद्धति बदल गई प्रत्येक राजा स्वतन्त्रता पूर्वक शासन करने लगा और लगभग एक सहस्र वर्ष से देशाधिकार भी इस जाति के हाथों मे शेष न रहा। यद्यपि सभ्यताके इस विशेष युग में संसार की प्रत्येक जाति ने उसी प्रकार की शासन पद्धति को उचित माना है। जो इस देश के मध्य प्राचीन काल में प्रचलित रही और प्रत्येक जाति अपने देश का शासन स्वयम् करतीहै। इसलिए इस देश के प्रति भी बृटिश सर्कार से देशाधिकार का मांगा जाना उचित समझा गया। इस कार्य्य के प्रति नेशनल कांग्रेस के नाम से एक महासभा की सृष्टि हुई जिसकी बैठक

सन् १८८५ ई० से लेकर इस समय तक प्रति वर्ष होती चली आई है। इस कांग्रेस के द्वारा प्रथम समय में सरकार से देश के प्रति कुछ साधारण अधिकार मांगेगये। जैसे सेना विभाग में व्यय की कमी, देश के बने कपड़े इत्यादि पर टेक्स की माफी, एक्ट असलह की मनसूखी (हथियार रखने की इजाजत) इत्यादि। परन्तु आशानुसार सरकार द्वारा शीघ्र उत्तर न मिलने पर क्रम क्रम से विरोध इसका बढ़ता गया और अन्त में भाव इसका सरकार को प्रथक करके सम्पूर्ण देशाधिकार को अपने हाथ में लेना तथा सरकार के विरुद्ध एक बड़ी शक्ति उत्पन्न करने के लिए वर्ण भेद वा जाति भेद को मिटाकर मुसलमानों समेत सबको एक जाति बना देना प्रकट हुआ। देश के हिन्दू मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, इत्यादि सब धर्म और सब जाति के मनुष्य प्रति वर्ष इसमें भाग लेते रहे और सरकार द्वारा मांग पूरी किए जाने की आशा करते रहे। विशेषकर जर्मन महासमर में इस देश के द्वारा भी सरकार को जब जन वा धनकी अधिक सहायता प्राप्त हुई इस आशा में और भी अधिक शीघ्रता उत्पन्न होगई। यद्यपि सरकार ने भी देशकी इस बड़ी सहायता पर अपने ध्यान को आकृष्ट किया और मान्टेगू वज़ीरहिन्द के मतानुसार क्रम क्रम से देशाधिकार दिये जाने के प्रति योजना (Scheme) स्वीकार की गई तथा कुछ भाग उसका उसी समय में प्रदानभी किया गया। परन्तु एकही साथ पूर्ण अधिकार दिया

जाना स्वीकार नहीं किया जो वास्तव में लाभदायक भी न था। इस कारण काङ्ग्रेसका भाव सरकारके प्रति अधिक विरुद्ध होगया। यह विरोध इतना अधिक बढ़ा कि सरकार के प्रत्येक कार्य का विरोध कियागया और कार्यबन्दी, करबन्दी, लगानबन्दी इत्यादि के द्वारा सरकारको पगहीन बनादेने का प्रयत्न किया जानेलगा। तथा अन्त में इसी के फलस्वरूप शिक्षित परन्तु उद्यमहीन नवयुवकों के हृदय में अङ्गरेज अधिकारियों के मारेजाने और सरकारी कोश वा शस्त्रागारों के लूटेजाने का भाव भी उत्पन्न होगया। सरकार उक्त सब उपद्रवों को दबादेने के प्रति यद्यपि समर्थ हुई। परन्तु इस समय तक जनता के हृदय से उत्सुकता उसकी निःशेष न होसकी तथा देशाधिकार के प्राप्त होजाने पर भी शान्ति होजाना उपद्रवों का संभव प्रतीत नहीं होता। क्योंकि देश के मध्य शासन व्यवस्था वा सामाजिक व्यवस्थाके विषयमें अनेक प्रकार के मत भेद उत्पन्न हो गये हैं। और आन्दोलन किया जाना जनता के प्रति स्वाभाविक होगया है।

कुछ समय पश्चात् काङ्ग्रेसके आन्दोलनसे मुसलमान प्रथक होगये। इस कारण केवल हिन्दुओं को ही अधिक हानि सहनी पड़ी। इसके सम्पूर्ण काल में तीन बार के आन्दोलन से लगभग एक लक्ष स्त्री पुरुषों को जेल जाना पड़ा। सहस्रों ग्रह बिगड़ गये। सहस्रों नवयुवकों के जीवन नष्ट हो गये और वृटिश जनता के हृदय में विरोध का भाव उत्पन्न हुआ। हिन्दू जाति की इस

हानिका उत्तरदायत्व काङ्ग्रेस के प्रधान नेता महात्मा गान्धी पर अधिक है। जो अधिक व्यस्क, अधिक विद्वान् और अधिक अनुभवी होनेपर भी विचार न कर सके कि महासमर के पश्चात् बृटिस सरकार की नीति में किस प्रकार का परिवर्तन हुआ है और मान्टेगू स्कीम किस कारण मनजूर की गई है। द्वितीय असहयोग आन्दोलन के प्रति देश की अवस्था किस प्रकार की है और सरकार कितनी अधिक शक्तिशालीहै। तृतीय कौसिलों में हिन्दुओं के भाग से लेकर मुसलमानों वा अछूतों को अधिक सीटें दिये जाने का लाभ क्या है। क्या इसके कारण देशाधिकार देने के प्रति सरकार बाध्य हो सकती है अथवा उक्त दोनों दल संतुष्ट रह सकते हैं। कांग्रेस की नीति का बिरोध न केवल सरकार द्वारा किया गयाहै। किन्तु शासन कमेटियों में हिन्दुओं के भाग से लेकर मुसलमानों वा अयोग्य जातियों को जो अधिक सीटें (बैठकें) दी गई हैं हिन्दुओं के द्वारा भी उनका अधिक विरोध किया जाता है और सवर्ण जातियों के साथ अछूतों को मिला देने का जो प्रयत्न किया जाता है वह भी नितान्त अनुचित वा अशान्ति का कारण समझा जाता है।

यदि माना जा सकता है कि मान्टेगू स्कीम के अनुसार जो कमीशन इस देश में आये उनका विरोध किया जाना उचित न था। द्वतीय, मुसलमानों को मिलाने के लिये सन् १९१६ की लखनऊ काङ्ग्रेस के मतानुसार प्रत्येक कौंसिल में तिहाई सीटें

दिया जाना उनको उचित न था। तृतीय, देशकी अवस्थानुसार अत्यन्त शक्तिशाली सरकार के विरुद्ध असहयोग का अन्दोलन खड़ा करना उचित न था चतुर्थ, अन्तिम रौन्ड टेबिल कांग्रेस के समय में देश के मध्य लगानबन्दी का प्रचार करना उचित न था। पंचम, सवर्ण जातियों के विरुद्ध अछूतों के हृदय में विरोधात्मिक भावों का बढ़ाना अथवा अछूत आन्दोलन का उत्पन्न करना उचित न था तो यह भी अवश्य माना जासकता है कि कांग्रेस की नीति जाति के लिये प्रत्येक प्रकार से हितकर नहीं है। और जाति के लिये उसके प्रत्येक कार्य्य पर ध्यान देने की अधिक आवश्यकता है। प्रत्येक आन्दोलनका स्वागत आंख मूंद कर किया जाना उचित नहीं।

ऊपर लिखागयाहै कि वास्तव में जातिभेद का भाव प्रत्येक जातिके मध्य विद्यमानहै, परन्तु सब जातियों में एकही प्रकार से माना नहींजाता। कारण इसका जातियोंका युग भेदहै। अर्थात् हिन्दू जातिके मध्य जातीयता का भाव आदिकालसेही उत्पन्न हुआ जो प्रकृति भेदकी दृष्टिसेथा। परन्तु अन्य जातियों के मध्य अधिक समय पश्चात धर्म प्रचार की दृष्टि से उत्पन्न हुआहैजब कि रक्त उनका अनेक जातियों के साथ मिश्रित होचुकाथा। तथा धर्म प्रचारकों ने आदर के भाव से अपनी संख्या वृद्धि की है इस कारण उनके मध्य जाति भेद का विचार

किया जाना सम्भव भी न होसका। * *

मुहम्डन जातियोंके मध्य ईरान, अफगान, टरकी इत्यादि के मुसलमान यद्यपि धर्म दृष्टिसे एकमाने जातेहैं परन्तु वास्तवमें प्रत्येक देशके मुसलमान जाति अपनो प्रथक समझते और रक्त अपना अन्य देशके मुसलमानों से यथा सम्भव प्रथक रखतेहैं। तथा हिन्दू वर्ण व्यवस्था के समान इनके मध्यभी शेख, सय्यद, मुगल पठान चार प्रकार के भेद पाये जातेहैं और सम्बन्धके प्रति इन भेदों के अनुसार अपनी जाति और पेशाका अधिक विचार करतेहैं इस के विरुद्ध सम्बन्ध करने वाला व्यक्ति निम्न दृष्टिसे देखाजाता है।

क्रिश्चियन जातियों के मध्य जाति भेद का कारण देश भेद माना जाताहै। इस देशभेदके अनुसार गोरी जातियां यद्यपि अपने समान वर्णवाली जातियों से भी भेद भाव रखती हैं परन्तु पूर्वी रंगीन जातियों से भेद इनका इसी प्रकार अधिक पायाजाता है जिस प्रकार से हिन्दू जाति अछूत वा अन्य जातियों से अपने को प्रथक रखती है। एक गोरे डाक्टर ने अपने अनुभव द्वारा जो अङ्क प्रकाशित किये हैं उनसे ज्ञात होता है कि फ्रान्स देशके मध्य (४२८) चारसौअट्ठाईस परिवारों से पूछे जाने पर कि वे एक उत्तम हवशी को अपने ग्रह में टिकासरा देसकते हैं वा नहीं उनमें से केवल (४५) पैंतालीस परिवारों ने नहीं माना। शेष ने स्वीकार करलिया परन्तु इङ्गलेन्ड

के मध्य पूछे जाने पर तीनसौपचास परिवारोंमें से दोसौपचास ने नहीं माना और होटलों में भी जिनकी आय केवल इसी प्रकार से होती है (१७०) एकसौसत्तर मेंसे केवल चालीस ने टिकाना उनका स्वीकार किया शेष (१३०) एकसौतीस ने कहा कि प्रतिदिन दो शिलिङ्ग अधिक पाने से हम उसको अपने होटलों में स्थान देसकते हैं अन्यथा नहीं (अखबार आज २७ मार्च सन् १६३१ ई० ) इसका प्रयोजन निःसन्देह एक उत्तम हबशी का इसी प्रकार समझाजाना है जिस प्रकार से हिन्दू मलिन जातियोंसे अपनेको प्रथक रखतीहै। तथा खोजकियेजाने पर अन्य जातियों के मध्य छुवा छूतके उदाहरण इसकी अपेक्षा और भी अधिक उज्जल प्राप्त होसकते हैं। जर्मन इत्यादि गोरी जातियां भी रंगीन जातियों को अपने देश में आनेसे इसी कारण रोकती हैं।

पिछले पृष्ठों पर लिखा गया है कि अन्य जातियों का संघटन धर्म की दृष्टि से हुआ है इस कारण उनके मध्य जाति भेद माना नहीं जासका क्योंकि कठिनता वा असमानताकी नीति के पालन किये जाने से कोई धर्म अपनी संख्या वृद्धि नहीं करसकता इसी कारण प्रत्येक धर्मप्रचारकने पिछलेधर्मों की अपेक्षा अपनी नीतिकोअधिक साधारण बनायाहै। प्रथम समयमें बौद्ध धर्म जो वैदिक धर्म के विरुद्ध उत्पन्न हुआ उसने वर्ण-भेद को नहीं माना इस कारण उसकी संख्या वृद्धि अधिक हुई।

इसके पश्चात् जो क्रिश्चियन धर्म उत्पन्न हुआ उसने धर्म प्रचार के लिये पूर्ण रूप से यद्यपि बौद्ध धर्म का ही अनुकरण किया, परन्तु परलोक सम्बन्धी प्रलोभन में इसकी अपेक्षा अधिक आगे बढ़ा। अर्थात् बौद्ध धर्म के अनुसार मुक्ति का पाना इच्छा शक्ति के नष्ट वा अधिकृत किये जाने पर निर्भर है और एक जन्म में संभव न होकर क्रम क्रम से अनेक जन्मों में प्राप्त हो सकती है। परन्तु क्रिश्चियन मतानुसार दया, दान, वा ईसूमसीह पर ईमान लाने द्वारा इसी जन्म में प्राप्त होने वाली वस्तु मानी गई है। इसी प्रकार से मुहम्मडन धर्म जो इसके भी पश्चात उत्पन्न हुआ उसके द्वारा सामाजिक जीवन के प्रति अधिक सुविधायें प्रस्तुत की गईं अर्थात अन्य सब धर्मों की अपेक्षा मुहम्मडन धर्म के मध्य सामाजिक जीवन अधिक सरल, मुक्ति पाना गुनाहों की तोबा वा रोजा नमाज पर अधिक अंश तक निर्भर और समाज के मध्य आदर पाने के लिए जिस प्रकार से हिन्दू-जाति के मध्य उच्च-वर्ण की आवश्यकता तथा क्रिश्चियन जातियों के मध्य अधिक धन की आवश्यकता है, मुहम्मडन जातियों के मध्य केवल इसलाम धर्म का माना जाना ही पर्याप्त समझा जाता है। सबके पश्चात इस समय में लेनिन मत द्वारा जो साम्यवाद का प्रादुर्भाव हुआ उसके मतानुसार मनुष्य के लिये परमार्थ की आवश्यकता किञ्चित नहीं मानी गई। और उद्योग के प्रति देश के प्रत्येक मनुष्य को

सुविधा प्रदान की गई। इस मत के अनुसार देश की आय तथा धन सम्पत्ति में देश के प्रत्येक मनुष्य का भाग माना जाता और श्रम लेकर प्रत्येक परिवार को उसकी आवश्यकतानुसार वेतन दिया जाता है।

वास्तव में जाति भेद का माना जाना व्यर्थ नहीं किन्तु प्रकृति अनुकूल है। क्योंकि प्रकृति से ही प्रत्येक जाति का हृदय मस्तिष्क वा शरीर का ढांचा विशेष प्रकार का उत्पन्न हुआ है। जिस प्रकार से इस देश के अंगूर वा अनार काबुल, कन्धार, के समान उत्पन्न नहीं होते इसी प्रकार से संसार की सब जातियां भी एक ही प्रकार की उत्पन्न नहीं हुई। इस लिये प्रत्येक जाति के प्रथक प्रथक समझे जाने का भाव अपने हृदय में न रखना तथा मिलजुल कर वर्णसङ्कर जातियों का उत्पन्न करना वास्तव में प्रकृति का विरोध करना और जातियों की प्रकृति जन्य विशेषता का नष्ट कर देना है। जिसका किया जाना किसी सभ्य जाति के द्वारा उचित माना नहीं जा सकता। और अनेक जातियों के एक ही स्थान में बसने से उनका प्रथक प्रथक रहना इसी प्रकार संभव है जिस प्रकार से हिन्दू जाति के द्वारा उचित माना गया अन्यथा नहीं। अन्य जातियों ने इस नीति को स्वीकार नहीं किया, इस कारण रक्त उनका अधिक अंश तक विकृत होगया और इस प्रकार से उन जातियों ने केवल अपने रक्त को ही विकृत नहीं किया किन्तु

अन्य जातियो की धर्मनीति को स्वीकार करके संसार से अपनी विशेषताकोभी मिटाडाला है।

यह हिन्दू जाति संसार की सर्वश्रेष्ट आर्य जाति का रक्त है और इस समय जो निर्बल अवस्था में पाई जातीहै, कारण इसकी धर्मनीति की अनोपयोगिता नहीं। किन्तु जिस प्रकार से अधिक श्रम करनेवाले मनुष्य का शरीर श्रम के पश्चात् शिथिल अवस्था को प्राप्त होताहै। उसी प्रकारसे विशेष उन्नति करनेवाली जाति के मध्य भी कुछ समय पश्चात् आलस्य और प्रमाद का उत्पन्न होजाना अवश्यम्भावीहै। इस जाति की श्रेष्टता यही है कि संसार के मध्य उन्नति के पथ पर प्रथम पग इसी जातिका आगे बढ़ा और उन्नति अवस्था इसकी अन्य जातियों की अपेक्षा अधिक समय तक स्थिर बनी रही। तथा सहस्र वर्षतक पराधीन रहकर भी अन्य जातियों के समान नष्ट नहीं हुई। ईरानी, मिश्रानी, यूनानी, रोमन, पाईगिलन, असीरियन इत्यादि अनेक जातियां जो इसके अधिक पश्चात् में उन्नत हुईं किञ्चित धर्म नीति उनकी संसार में शेष न रही। अपनी धर्मनीति को लेकर कृश्चियन वा इसलाम धर्म के महासागरोंमें बिलीन होगईं। इसलाम शक्ति जो केवल तेरहसौ वर्ष प्रथम उत्पन्न हुई और कुछसमयतक संसारको कम्पायमान करतीरही अधिक समय से मरण अवस्था को प्राप्त होरही है। इसलिये पश्चिमी जातियों के इस नवीन चमत्कार का दर्शन

करके जिनकी शक्तियोंको उत्पन्न हुये केवल दो तीन शताब्दियां व्यतीत हुई, अपनी जातिको हीन दृष्टि से देखना, इसके नीति धर्म की अवहेलना करना और इसके प्रति सहानुभूति न रखना हमारा अत्यंत भ्रम, अत्यंत अज्ञानता और अत्यंत कायरताहै। हमारा परम कर्तव्य है कि संसार की यह अग्रगण्य आर्य जाति जो वास्तव में हमारीही असावधानी के कारण इस निर्बल अवस्था को प्राप्त हुई है इसका विचार करें। अपने विस्तृत इतिहास पर दृष्टि डालें कि किन कारणों से इसको यह अवस्था प्राप्त हुई और जीवन संग्राम के प्रति किसी अन्य सेना के सिपाही न बने किन्तु अपनेही मध्य उन शक्तियों का उत्पन्न करना आवश्यक समझें जो इस युग के नवीन जीवन संग्राम के प्रति नितान्त आवश्यक हैं। अर्थात् (१) श्रमशील और कार्यकुशल बने केवल लिखने पढ़नेकी शिक्षा को पर्याप्त न समझें (२) सत्यनिष्ठ बने और अनुचित व्योहार के स्थानमें विश्वस्त बनना उचित समझें (३) उदार बने अपने समाज वा समुदाय के लाभ मेंही अपना लाभ समझें (४) अपने हृदय में राष्ट्रीयता के भाव को जागृत करें जो हमारे सब वर्णों के मध्य सहस्रोंवर्ष से चलाआता है और इस समय में देशाधिकार के न रहने से शिथिल होगया है (५) धन और विज्ञान की उन्नति करना अपना धर्म जाने। स्वास्थ्य, शिक्षा, सदाचार, व्यापार, और कलाकौशल वा सैनिक बलका बढ़ाना

केवल इसी के अर्थ आवश्यक समझें (६) शिक्षा विभाग में इस प्रकारका संशोधन करावें जिनके द्वारा सैनिक वा शिल्पिक योग्यता प्राप्त होसके और विद्यालयों वा विश्वविद्यालयों को धनकी इतनी अधिक सहायता प्रदान कीजावे जिसके द्वारा जाति के धन हीन बालक भी अधिक शिक्षा प्राप्त कर सकें (७) कृषि और कारीगरी की उन्नति के लिये इस देश में अधिक स्थान खालीहै। इसलिये बड़े बड़े संघोंका निर्माणकरके जमींदार कृषि की ओर बड़े बड़े विद्यालय शिल्पकी उन्नति का उचित प्रबन्ध करें तथा सरकार से इस प्रकार की सहायता प्राप्तकरना भी आवश्यकसमझें।

जाति के मध्य इस समय में असहयोग, वर्ण विरोध, अछूत उद्धार और स्त्रियों की स्वतन्त्रता इत्यादि के प्रति जो आन्दोलन उत्पन्न हुए हैं तथा इसी प्रकार के बिल कौंसिलों में प्रस्तुत किये जाते हैं। यह जातीय सभ्यता तथा उन्नतिके अधिक प्रतिकूलहैं। इनके द्वारा स्त्री पुरुष के मध्य, जाति जाति के मध्य, और जनता सरकार के मध्य, केवल विरोधका भाव उत्पन्न होना अवश्यम्भावी है परन्तु लाभ किसी प्रकार का नहीं। तथा सफलता का प्राप्त होना भी इन कार्यों में अधिक समय तक संभव प्रतीत नहीं होता। क्योंकि हिन्दू जाति की सामाजिक प्रथाएँ अधिक दृढ़ अवस्था में हैं।

इस समय में संसार पर पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव

अधिक है और हिन्दू जाति पर प्रभाव इसका विशेष प्रकार से है। जिसके फलस्वरूप वर्ण-व्यवस्था का विरोध किया जाता है और सामाजिक रीति नीति का परिवर्तन किया जाना उचित समझा जाताहै। देश की शासन पद्धति भी बदल रहीहै। जिसके कारण जातियों के मध्य परस्पर देशाधिकार की तथा ऊंच नीच की ईर्षा उत्पन्न हुई है और जातीय लाभोंके प्रति अनेक प्रकारके मत तथा अनेक प्रकार की संस्थाएँ उत्पन्न हुईहैं। इस अवस्था में हमारे प्रति उचितहै, कि हम यद्यपि पश्चिमी गुणों का लाभ अवश्य ग्रहण करें परन्तु उसकी सभ्यता के सन्मुख अपना मस्तक न झुकादें और सहस्रों वर्ष से जिस प्रकार अपनी रीति नीति की रक्षा करते चले आये हैं उसी प्रकार इस समय में भी किया जाना उचित समझें।

रोटी भेद जो जाति के मध्य अधिक पाया जाता है। इस समय की शिक्षा सभ्यता के नवीन भाव ने अथवा देशाटन की अधिक आवश्यकता ने इसको अधिक अंश तक अप्रिय वा असहनीय बना दियाहै। इसलिये उचित है कि ब्राह्मण इत्यादि सवर्ण जातियां अपने अपने मध्य के भेदों को दूर करके यथा संभव केवल एक ही एक जाति बने जिसके कारण प्रत्येक वर्ण वा जातिका क्षेत्र विस्तृत हो जावे और सम्बन्ध इसका सम्पूर्ण देश के साथ उत्पन्न होसके। प्रत्येक वर्ण वा जाति के अधिक प्रभावशाली व्यक्तियों की एक समिति स्थापित होकर और

अधिक समय तक स्थिर बनी रहकर सम्पादन इस कार्य का कर सकती है। इसके विषय में सब से प्रथम कर्त्तव्य ब्राह्मणों का है। कि वे अपने मध्य के अनेक भेदों को दूर करना स्वीकार करें। जिसके कारण अन्य जातियोंके हृदय में इसी प्रकार का साहस उत्पन्न हो सके।

इस समय में जाति की जिन जिन प्रथाओं का अधिक विरोध किया जाता है विवरण उनका अगले प्रकरण में दिया जाता है।
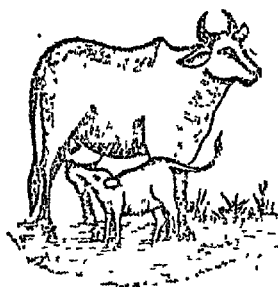
# हिन्दू जाति की सामाजिक प्रथायें

संसार की जातियों में प्रथम उदय हिन्दू जाति का हुआ इस कारण हिन्दू सभ्यता संसार की पहली सभ्यता है। जिसका प्रारम्भ हुये न्यूनता पांच सहस्र वर्ष व्यतीत हुये। इस अधिक समय में देश के मध्य अनेक प्रकार के शासन बदले, बड़े बड़े धर्म विप्लव हुये और जाति की नाव अनेक शताब्दियों तक विरुद्ध सभ्यताओं के प्रवाह से टकराती रही, परन्तु हिन्दू सभ्यता अपने स्थान में इस समय तक स्थिर बनीहुई है, और इस समय में भी पश्चिमी सभ्यता के साथ संघर्षित होरही है।

जातीय सभ्यता का प्रथम स्थान गृहजीवन है। परन्तु हिन्दूजाति के समान निष्कण्टक और सुविधाजनक गृहजीवन किसी अन्य जातिके मध्य पाया नहींजाता। गृह जीवन का सुख तथा सामाजिक व्यवस्था का सुन्दर स्वरूप स्त्री पुरुषके प्रेमपूर्वक दृढ़ सम्बन्ध पर निर्भर है और यह सम्बन्ध जिस प्रकार से स्थिर बनारहसकता है स्त्री जातिका पतिव्रत धर्म है। जिसका प्रयोजन आयुपर्यंत दूसरे पुरुष की इच्छा न करना और उसीकी प्रधानता में रहकर अपना जीवन विताना है। इसी प्रकार पुरुष का धर्म भी आयुपर्यन्त पत्नी का सुख पूर्वक जीवन निर्वाह करना और वन्ध्या वा कुरूप होनेपर भी उसका निरादर वा परित्याग न करना है। सामाजिक जीवनके प्रति यही हिन्दू

जातिकी विशेष नीति है जो अन्य जातियों के मध्य पाई नहीं जाती। वास्तव में स्त्री पुरुष का दृढ़ सम्बन्ध हुये बिना संसारिक जीवन में सुख सुविधाओं का प्राप्त होना संभव नहीं। अपनी इस नीतिका लाभ अन्य जातियों की जीवन अवस्था पर ध्यान देने से हम को ज्ञात होसकता है। कि हिन्दू जाति अधिक आय के न होने पर भी किस प्रकार से संतृप्त रहती और अनेक उत्सवों वा मरण जीवन सम्बन्धी संस्कारों में कितना अधिक व्यय करती है। परन्तु इसी देश के मध्य अन्य जातियां यद्यपि सामाजिक कार्यों मे अधिक व्यय नहीं करतीं तथापि हिन्दुओं की अपेक्षा ऋण ग्रस्त वा धन सम्पत्ति हीन अधिक पाई जाती हैं। इस अन्तर का विशेष कारण हिन्दू जाति की उद्यम शीलता वा मितव्ययता नहीं, किन्तु स्त्री जाति का गृह प्रेम है क्योंकि इस जाति के मध्य पति पत्नी जीवन पर्यन्त के लिये अपने परस्पर के सम्बन्ध का दृढ़ विश्वास रखते और प्रत्येक गृह सम्बन्धी लाभ को जीवन पर्यन्त के लिये दोनों अपनाही समझते तथा भविष्य का अधिक बिचार करते हैं। परन्तु जिस समाज के मध्य पति पत्नी दोनों के हृदय में प्रति समय अपने सम्बन्ध विच्छेद का भय उपस्थित रहता है उनके हृदय में इस प्रकार के उत्तम भाव का उत्पन्नहोना संभव नहीं हो सकता। वे प्रस्तुत लाभों पर ही अधिक ध्यान रखते और भविष्य के हित को संदिग्ध दृष्टि से देखते हैं।

योरोप की क्रिश्चियन जातियां जो इस समय में अधिक सभ्य मानी जातीं और अपने अनेक उत्तम गुणों के कारण उत्तम अवस्थामेंभी पाई जाती हैं। हिन्दू जाति के समान निष्कण्टक तथा विश्वस्त गृह जीवन उनको प्राप्त नहीं। उनके अधिक ऊंचे घरानों में भी पति पत्नी के मध्य परस्पर झगड़े उत्पन्न होते और सम्बन्ध विच्छेद के प्रति: प्रतिवर्ष सहस्रों झगड़े उनके अदालतों में जाते हैं। तथा इस प्रकार के झगड़े लेकर अदालतों में जाते हैं कि हिन्दू जाति के मध्य निम्न जातियों में भी पाये नहीं जाते। जैसे अधिक समय से पतिने मुझसे प्रेम नहीं किया, मेरा मुख नहीं चूमा, वा अच्छे प्रकार से मेरा भरण पोषण नहीं किया, अथवा मेरा प्रेम अमुक पुरुष के साथ होगया है इस कारण में इसपतिको छोड़देना चाहती हूँ ( अखबार आज २ मई सन् १९३२ ई० ) इत्यादि। इस प्रकार के उनके अनेकों झगड़े न केवल अदालतों में जाते किन्तु सम्बन्ध विच्छेद के प्रति गुप्त रीति से भी अनुचित प्रयत्न किये जाते हैं। इस बुरी प्रथा के फलस्वरूप पश्चिमी जातियों का गृह जीवन सदैव भय सम्पन्न रहता और अधिक व्यय किए जाने पर भी निर्वाह होना कठिन होजाताहै। परन्तु हिन्दू स्त्रियोंका विशेष गुण लज्जा और नम्रता है यह अपने पति का निरादर करना अधर्म समझती और परजनों वा गुरुजनों के सन्मुख विलासता का नकल करना अपनी निर्लज्जता अनुभव करती हैं। वास्तव में

लज्जा के वशीभूत रहना ही मनुष्य की परम सभ्यता है, क्योंकि निर्लज्जता ही प्रत्येक अनाचार की जड़ है और अशान्ति का मूल कारण है। इसलिये हिन्दू स्त्रियों के मध्य लज्जा और नम्रता का अधिक होना उत्तम गुण है। पश्चिमी नीति का अनुकरण करके अपनी स्त्रियों के उत्तम गुणों का नष्ट कर देना अत्यन्त भ्रम है। परन्तु इस समय में उन्नति शील पश्चिमी जातियों की सभ्यता उचित मानी जाती है और उनकी भाषा वा धर्म नीति का प्रचार देश देशान्तरों में हो रहा है। तथा इस देश की शासन व्यवस्था वा शिक्षा बृटिश जाति के ही अधिकार में है और पश्चिमी शिक्षा पाने वाले मनुष्य ही उसके अधिकारी हैं। इस कारण इस देश के नवशिक्षित मनुष्यों के हृदय में इस नवीन पश्चिमी सभ्यता के प्रति आदर और अपनी प्राचीन सभ्यताके प्रति निरादर का भाव उत्पन्न होजाना आश्चर्य जनक नहीं। वे अपनी जातीय प्रथाओं को ही अपने पतन का कारण और पश्चिमी प्रथाओं को ही योरोपियन जातियों की उन्नति का कारण समझते हैं। इसी कारण अपनी प्रत्येक प्रथा को घृणा की दृष्टि से देखते और उसके स्थान में प्रत्येक पश्चिमी रीति नीति का स्वीकार कर लेना उचित ठहराते हैं। अर्थात् पश्चिमी जातियों के समान प्रत्येक स्त्री पुरुष को अपने सम्बन्ध विच्छेद (तलाक) का अधिकार मिलना, स्त्रियों के विधवा होजाने पर पुरुषों के समान उनका दूसरा विवाह

किया जाना, स्त्रियों को पर्दे में न रखना और पुरुषों के समान स्त्रियों को भी गृह से बाहर जाने, रहने वा उद्यम करने आदि की स्वतन्त्रता प्रदान करना, सरकारी सर्विसों वा राजनैतिक कार्य्यों में भाग लेने के प्रति स्त्रियों को भी अधिकार देना तथा कौंसिलों में जाने के प्रति उनको अधिकारी समझना, भङ्गी, चमार, इत्यादि मलिन जातियों से प्रथक न रहना और उनके साथ बैठकर भोजन भी कर लेना, कच्ची रसोई को पक्की के समान समझना और कपड़े, जूते पहन कर भोजन करना, वर्ण भेद वा जाति भेद का मिटा देना और देश की सब जातियोंके साथ मिलकर एक जाति बनजाना, इत्यादि वे अपनी प्रत्येक प्रथाको व्यर्थका प्रतिबन्धन बतलाते और अन्य जातियों से भी अधिक उच्छृङ्खल हो जाना उचित समझते हैं तथा इसी को अपनी उन्नति का मूल कारण मानते हैं। परन्तु सामाजिक अवस्था प्रत्येक जाति की प्रथक प्रथक है और बन्धन किसी न किसी प्रकार के प्रत्येक जाति के मध्य विद्यमान है। स्त्री पुरुष का वैवाहिक सम्बन्ध भी एक प्रकार का बड़ा बन्धन है। स्वतंत्रता का अर्थ यदि पूर्ण स्वतंत्रता माना जावे तो जातियों की अवस्था जङ्गली जीवों के समान उत्पन्न हो जावे। इसलिये हमको अन्य किसी जाति के अनुकरण करने की आवश्यकता नहीं, किन्तु इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है, कि हमारी सामाजिक प्रथायें किस किस

उद्देश्य से निर्दिष्ट की गई हैं और उनका पालन किया जाना सम्प्रति काल में किस किस अंश तक संभव है। तथा पश्चिमी जातियों में किस किस प्रकार के उत्तमगुण हैं और वे गुण किस प्रकार से ग्रहण किये जा सकते हैं, कि स्वयम् अपनी जाति का स्वरूप विकृत होने से बचा रहे। क्योंकि जाति की सामाजिक प्रथाओं वा धार्मिक मन्तव्यों का बदल जानाही उसके स्वरूपका बदलजाना होता है। और मृत्यु का सूचक माना जाता है।

पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से इस देशके मध्य अधिकांश मनुष्यों के हृदय में स्वतंत्रताका भाव इतना अधिक बढ़ गया है, कि जातीय प्रथा के अनुसार बहुधा शिष्य अपने शिक्षक की, पुत्र अपने पिता की, प्रजा अपने राजा की और स्त्री अपने पति की इच्छानुसार चलना, आवश्यक नहीं समझते। तथा नवयुवक वृद्ध जनो के अनुभव और आयु का कुछ आदर नहीं करते। उनका मत यह है कि प्रत्येक मनुष्य स्वतन्त्र रहने का अधिकारी है और स्वतन्त्रता का अर्थ उच्छृङ्खलता है। स्त्रियों के विषय में उनका जो मत है कि स्त्रियों को पर्दे में रखना, पुनर्विवाह का अधिकारी न ठहराना और शिक्षा वा उद्यम आदिके अधिकारों से उनको वञ्चित रखना न्याय सङ्गत नहीं। यह मत साधारण दृष्टि से यद्यपि उचित प्रतीत होता है परन्तु वास्तव में जाति के प्रति हानिकारक है। क्योंकि पुरुष जाति की अपेक्षा स्त्री जाति प्रकृति से ही निर्बल तथा निर्बुद्धि उत्पन्न

हुई है और उद्यम वा शासन के प्रति अधिक से अधिक बल बुद्धि की आवश्यकता है, इस कारण प्रत्येक समय मे प्रत्येक जाति के द्वारा प्रधानता पुरुष जाति कीही मानी गई है और अधिक परिश्रम वा बुद्धि सम्बन्धो कार्य्यों का भार यथा संभव पुरुष जातिकेही कन्धों पर रक्खा गया है। इसके विरुद्ध उद्यम सेना, वा शासन बिभागों में स्त्रियों को पुरुषों के समान यदि अधिक स्थान दिये जावें और पुरुषो के समान उनको भी गृह से बाहर रहने वा उद्यम करने आदि की स्वतन्त्रता प्रदान की जावे तो निःसन्देह गृह जीवन सुविधा जनक न रहे। रक्त भेद की मर्यादा नष्ट हो जावे और स्त्री जाति का वर्तमान सुख वा गौरव भी शेष न रहे। क्योंकि गृह का भीतरी जीवन सुख सम्पन्न और सुरक्षित परन्तु बाहरी जीवन अत्यंत कष्ट साध्य तथा विपत्ति-जनक होता है। जिसके मध्य प्रतिदिन अनेकों प्रकार के झगड़े उत्पन्न होते और बहुधा अदालतों में जाते हैं। इस कारण स्त्री जाति उन कार्यों के प्रति उपयुक्त नहीं। तथा गर्भस्थित वा प्रसव अवस्था में बाहरी कार्यों का किया जाना उनके द्वारा संभव भी नहीं। इस लिये गृह के भीतरी कार्यों के प्रति स्त्री जाति का और बाहरी कार्यों के प्रति पुरुष जाति का उत्तरदायत्व स्वभाव से ही उत्पन्न हुआ है। संसार की कोई जाति नहीं जिसने पुरुष जाति की प्रधानता को स्वीकार नहीं किया और किसी जाति

के मध्य कोई नेता उत्पन्न नहीं हुआ जिसने स्त्री जाति की उच्छृङ्खलता का विरोध नहीं किया है। मनुजी का, मसीह का, बुद्धजी का, तुलसीदास का, मुहम्मदसाहब का, सूपनहार का, और सेक्स पियर इत्यादि बड़े बड़े नीतिकारों का यही मत है कि स्त्रियों का स्वतन्त्र रखना उचित नहीं। एशियाई जातियों की अपेक्षा योरोप की जातियों के मध्य स्त्रियों को स्वतन्त्रता अधिक अंश तक प्राप्त है। वे क़स्बों, होटलों, बाजारों में वा अन्य पुरुषों के समीप इच्छानुसार जा सकतीं और वैवाहिक सम्बन्ध अपनी इच्छानुसार कर सकती हैं। तथाजबचाहेंपतिको छोड़कर दूसरा पति भी स्वीकार कर सकती हैं। इस कारण पतियों को उनके प्रति अधिक सभीत रहना पड़ता है और हिन्दुओं के समान निष्कण्टक तथा विश्वस्त गृह जीवन उनको प्राप्त नहीं होता। जिसका विवरण ऊपर दिया जा चुका है। हिन्दू जाति की स्त्रियों को यदि गोरी स्त्रियों के समान स्वतन्त्रता प्रदान की जावे तो गोरी जातियों की अपेक्षा वह और भी अधिक हानिकारक सिद्धि होगी। क्योंकि योरोप की जातियां एक ही वर्ण और एक ही सभ्यता द्वारा संघटित हैं। परन्तु भारत वर्ष के प्रत्येक नग्र वा ग्राम में अनेक वर्ण वा अनेक प्रकार की सभ्यता रखने वाली जातियां बसी हुई हैं। जिनके मध्य खान पान वा रक्त सम्बन्ध का भेद सहस्रों वर्ष से चला आता है। इस कारण स्त्रियों को नितान्त उच्छृङ्खल

बना देने से इस जाति के रक्त और सभ्यता का सुरक्षित बना रहना संभव नहीं हो सकता। क्योंकि जाति की नीति वा रक्त की रक्षा वास्तव में स्त्रियों के ही अधिकार में है। उन्हीं के द्वारा सन्तानों को प्राप्त होती है।

स्त्रियों के विषय में जो तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि उनको स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं और बन्दी मनुष्यों के समान गृह में बन्द रखना उनका न्याय सङ्गत नहीं तथा इसी कारण स्वास्थ्य भी उनका अच्छा नहीं रहता। यह तर्क वास्तव में सत्य नहीं क्योंकि सरस्वती अक्टूबर सन् १९२७ ई० के अनुसार इस देश के मध्य सन् १८८१ ई० के अङ्कानुसार औसत जीवन प्रति पुरुष २४·५० वर्ष और प्रति स्त्री २५·२० वर्ष है। इसी प्रकार सन् १८९१ ई० के अङ्कानुसार प्रति पुरुष २४·४०, प्रति स्त्री २४·९० । सन् १९०१ ई० के अनुसार प्रति पुरुष २४·७०, प्रति स्त्री २५·१० । सन् १९११ के अनुसार प्रति पुरुष २४·७०, प्रति स्त्री २४·५० । सन् १९२१ ई० के अनुसार प्रति पुरुष २४·८० प्रति स्त्री २४·०७ है तथा औसत पचास साल का प्रति पुरुष २४·६२ प्रति स्त्री २४·८० पाया जाता है। यद्यपि गत ३० वा चालीस साल से स्त्रियां परिश्रम सम्बन्धी कार्य्य नहीं करतीं तथापि स्वास्थ्य उनका पुरुषों की अपेक्षा अधिक उत्तम पाया जाता है। वास्तव में हिन्दू जाति के मध्य स्त्रियों का जीवन पुरुषों की

अपेक्षा अधिक रक्षित, अधिक सन्मानित तथा अधिक सुख पूर्ण हैं और उनकी स्वाभाविक योग्यताके अनुकूलभीहै। इसलिये उच्च वर्णों की स्त्रियों को उच्छृङ्खल बनाना और गृह से बाहर रहकर शिक्षा पाने वा उद्यम करने की स्वतन्त्रता प्रदान करना उचित वा आवश्यक नहीं। क्योंकि इस देश के मध्य जन संख्या अधिक है और कला कौशल अधिक नहीं, इस कारण करोड़ों मनुष्यों को पर्याप्त भोजन प्राप्त नहीं होता और सहस्रों शिक्षित मनुष्य भी ठगी करते वा डाका डालते हैं। ऐसी अवस्था में स्त्रियां कालेजों की शिक्षा पाकर वा गृह से बाहर निकल कर क्या लाभ प्राप्त कर सकती हैं। वास्तव में स्त्रियों को किसी समयमें भी गृह से बाहर काम करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि गृह प्रबन्ध वा बच्चों का पालन पोषण उनकी कम सहायता नहींहै। तथाउद्योग सम्बन्धी अनेक प्रकार के कार्य गृह के मध्य भी किए जा सकते हैं। कुछ स्त्रियां जो योरोप वा अमेरिका इत्यादि अन्य देशों में गृह के बाहर काम करती पाई जाती हैं, इस देश में भी किसानों वा श्रमजीवी जातियों की स्त्रियां सदैव काल से करती चली आई हैं। इसलिये स्त्रियों के विषय में हमको अन्य जातियों की अपेक्षा अधिक आगे बढ़ने की आवश्यकता नहीं और स्त्रियों को स्वच्छन्द बना देने से स्वयम् उनका महत्व, गृह का उत्तम प्रबन्ध, और जातीय रक्त वा सभ्यता का सुरक्षित बना रहना भी संभव नहीं! यद्यपि

शिक्षित किया जाना उनका आवश्यक है। परन्तु शिक्षा इस प्रकार की दिया जाना उचित है जो उनको उच्छृङ्खल न बना सके और पुरुषों की प्रधानता के विरुद्ध उनके हृदयमें स्वतन्त्रता का भाव उत्पन्न न कर सके जो न केवल जातीय सभ्यता के ही सर्वथा विरुद्ध है किन्तु सम्पूर्ण संसारके मध्य प्रधानताका नियम उचित माना जाता है और सामाजिक व्यवस्था वा शासन व्यवस्था का प्रथम नियम है। किसी संस्था के मध्य दो व्यक्तियों का समानाधिकार रखना संभव नहीं। इसलिये वास्तव में गृह सभ्यता हिन्दू जाति की अधिक उपयोगी है इसको मिटाकर स्त्रियों को स्वतन्त्र वा उछृङ्खल बनाने का अर्थ अपनी जातीयता की दीवारों का गिरा देना तथा स्त्रियों के गौरव का अथवा गृह की सुख शान्ति का मिटा देना है। स्त्रियों को जिस प्रकार की शिक्षा दिया जाना उचित है। विवरण उसका पुस्तक के अन्तिम निबन्ध में दिया जाता है।

दूसरा प्रश्न हिन्दू जाति के विरुद्ध खान पान का है। यह कहा जाता है कि भारतवर्ष में सब जातियों का भोजन सम्बन्ध यदि एक होता तो संघटन अधिक होता और अन्य जातियों के द्वारा इस देश का विजित होना वा शासित होना संभव न होता। इस मत का समर्थन देश के नव-शिक्षित तथा चतुर्थ वर्ण वाली जातियों द्वारा अधिक किया जाता है जिनका प्रयोजन सवर्ण जातियों के साथ समानता का प्राप्त

करना है। यह मत भी भ्रम रहित नहीं। अर्थात् देश की सब जातियोंका भोजन सम्बन्ध यदि एक होता तो हानिभिश्रित सुविधा कुछ अवश्य होती। परन्तु इस प्रथा के न होने से जाति का संघटित रहना वा उन्नति कर सकना असंभव नहीं है। जब ब्राह्मणों का बनाया सब जातियां भोजन करती हैं और सवर्ण जातियों का बनाया चतुर्थ वर्ण की सब जातियां भोजन करतीं हैं, तथा आपत्ति काल में इस नियमका पालन न किया जानाभी धर्म विरुद्ध माना नहीं जाता, तब खान पान की इस नीति के कारण असंघटन का तर्क उत्पन्न नहीं हो सकता। और असंघटन वा विरोध का कारण यदि रोटी भेद होता तो एक ही थाली वाले ईसाई वा मुसलमानों के मध्य व्यक्ति व्यक्ति वा जाति जाति का विरोध पाया न जाता। तथा अल्प-काल में ही मुहमडन जातियों का अवनत होना वा अधिक बड़े साम्राज्य से प्रथक होजाना सम्भव न होता। इस लिये हिन्दू जाति के अन्य जातियों द्वारा विजित वा शासित होने का विशेष कारण जाति भेद, वा रोटी भेद, नहीं किन्तु मानसिक निर्बलता है। जो जातियों के मध्य अधिक समय की सुख शांति के पश्चात् अवश्य उत्पन्न होजाती है। मुसलमानों ने जब इस देश पर चढ़ाई की उनके सन्मुख केवल क्षत्रियों की संख्या अधिक थी और बृटिश जाति ने जब इस देश को अधिकृत किया उसके विरुद्ध एकही थाली वाले मुसलमानों, सिक्खों वा

मरहठों, की संख्या अधिकथी। इसलिये रोटी भेदके कारण जाति को निर्बल समझना सत्य नहीं। हिन्दू जाति के मध्य यदि औद्यौगिक तथा शिल्पिक बलका प्रादुर्भाव हो और स्वार्थ बुद्धिको छोड़कर जाति हित की दृष्टि से कार्य करने का भाव उत्पन्न हो जावे तो जाति भेद की इसी अवस्था में यह जाति सब प्रकार की उन्नति प्राप्त कर सकती है।

( ३ ) तीसरा प्रश्न हिन्दू जाति के विरुद्ध इसके मध्य राष्ट्रीयता का न होना है। यह भी इसकी नीति का दोष नहीं क्योंकि प्रत्येक वर्ण वा जाति का अन्य वर्णों वा जातियों से अपने को प्रथक समझना और ऊँच या नीच के भाव से अपने हृदय में अभिमान वा ईर्षा को स्थान देना केवल भ्रम है। जो अर्ध शताब्दी पूर्व तक इस जाति के मध्य न था। परन्तु इस समय में देश की विषम परस्थित के कारण उत्पन्न हो गया। वास्तव में हिन्दू जाति ने सम्पूर्ण राष्ट्र को एक शरीर माना और कार्य भेद की दृष्टि से प्रत्येक वर्ण वा जाति को उसका एक अङ्ग माना है। जिस प्रकार से शरीर के सब अङ्ग अपने अपने कार्य के उत्तरदाई हैं परन्तु उद्देश्य सबका एकही, शरीर का पोषण करना है। तथा प्रत्येक अङ्ग का जीवन भी अन्य सब अङ्गों की सहायता पर निर्भर है। इसी प्रकार से इस देशकी सब जातियां भी यद्यपि कार्य भेद से प्रथक प्रथक हैं परन्तु वास्तव में एकही जाति रूपी शरीर का अङ्ग है। इसी बुद्धिका नामसंघटन

है और इसी बुद्धि के विस्मरण हो जाने से जाति असंघटित हो जाती है। यद्यपि आपेक्षिक दृष्टि से राष्ट्र के मध्य भेद बुद्धि का होना भी स्वाभाविक है। यदि हम अपने शरीर के युगल अङ्गों में से किसी एक अङ्ग के प्रथक करा देने के प्रति बाध्य किये जावें तो अवश्य हम अपना बायां अङ्ग ही उपस्थित करेंगे दायां नहीं। तथा स्वयम् गृह के मनुष्यों में भी हम अपने हृदय में किसी मनुष्य को प्रथम स्थान देते हैं और किसी को दूसरा वा तीसरा। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि अपना बायां अङ्ग वा गृह का दूसरा वा तीसरा व्यक्ति हमको प्रिय नहीं है। हिन्दू शासन काल में ईरानी, यूनानी, चीनी, मुसलमान वा ईसाई इत्यादि यात्री जो इस देश में आये और अधिक समय तक भ्रमण करके अनुभव अपना लिख गये किसी के इतिहास द्वारा इस जाति के चतुर वर्णों के मध्य परस्पर विरोध का होना वा शूद्र वर्ण वाली जातियों का दुखित वा अपमानित रहना पाया नहीं जाता क्योंकि हिन्दू जाति के मध्य निर्बल जातियोंको नष्ट कर देने वा गुलाम बनाकर रखने की प्रथा किसी समय में प्रचलित नहीं रही जैसी कि क्रिश्चियन वा मुहमडन जातियों के मध्य उन्नीसवीं शताब्दी तक प्रचलित रही है। वेदादि ग्रन्थों के द्वारा अनार्य जातियों के प्रति विरोध का भाव जो प्रकट होता है वह अत्यंत प्राचीन काल का है और दो जातियों के संघर्ष काल में अग्रज्ञा धर्मादि

विरोध के कारण प्रत्येक देश के मध्य बारम्बार ऐसा ही हुआहै। परन्तु इस समय में वे सब देश संघटित अवस्था में हैं और उनकी उन्नतिका विशेष कारणभी यही पायाजाताहै। इस समय हिन्दू जातियों के हृदय में यह भाव जो शिथिल हो गया है। कारण इसका देशाधिकार का न रहनाहै। क्योंकि जिस जाति का अधिकार अपने देश पर नहीं रहता उसका संघटन बल भी क्षीण होजाता है। इसलिये जाति भेद के कारण अपने को पृथक पृथक समझना अत्यंत भ्रम है और अनेक लाभों से वञ्चित रहने का विशेष कारण है।

हिन्दुओं के विरुद्ध अछूत जातियों के विषय में दो प्रकार के तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं। पहला तर्क यह है कि उनका अछूत समझा जाना वा उनसे पृथक रहना उचित नहीं। उत्तर-इसका अधिक अंश तक पिछले प्रकरण मे दिया जाचुका है। अर्थात् पृथक रहने का प्रयोजन वास्तव में उनका बहिष्कार करना वा पृथक समझना नहीं। किन्तु संयुक्त रहकरभी अपने रक्त और सभ्यताका सुरक्षित रखनाहै। जिसका भाव किसी न किसी रूप से प्रत्येक सभ्य जाति के मध्य अवश्य पाया जाता है।

योरोप की सभ्य गोरी जातियों के मध्य यद्यपि हिन्दू जाति के समान जाति भेद नहीं है। परन्तु उसके स्थान मे रङ्गभेद वा अर्थ भेदहै। जिस प्रकार से हिन्दू जाति के मध्य

धनवान मनुष्य अपनी जाति वाले दरिद्र मनुष्य के साथ बैठकर भोजन करता, उसके साथ अपना रक्त सम्बन्ध करता और आयु भेद से उसके सन्मुख अपना मस्तक भी झुकाता है। यह भाव पश्चिमी जातियों के मध्य नहीं। इनके मध्य धनवान मनुष्य दरिद्र मनुष्य के साथ बैठकर भोजन नहीं करता। सम्बन्ध उसके साथ नहीं करता और मिलने के समय में आदरका भावभी प्रकट नहीं करता है। राष्ट्रीयता का भावजो इस समय में इनके मध्य उत्पन्न हुआ है। प्रयोजन इनका देश लाभ की दृष्टि से संघटित होना है। जो देशाधिकार के समय हिन्दू जाति के मध्य भी इसी प्रकार का था और देशाधिकार के न रहने पर किसी जाति के मध्य स्थिर नहीं रहसकता।

वर्ण भेद वा जाति भेद जो हिन्दू जाति के मध्य पाया जाता है न केवल स्वाभाविकहै किन्तु प्रयोजनीय भी है। इसका प्रयोजन परम्परा की नीति से प्रत्येक प्रकार की कार्य्य शक्तिको साधारण बनाना। द्वितीय प्रत्येक मनुष्य के लिये विशेष प्रयत्न वा परिश्रम के बिना ग्रह से ही शिक्षा वा उद्यम प्राप्त हो सकना। तृतीय अर्थ लाभ की दृष्टि से जाति का सुव्यवस्थित रहना किसी विशेष कालमें विशेष लाभकी और अधिक मनुष्यों का प्रवृत्त न हो सकना। चतुर्थ जाति के रक्त और इसकी संस्कृत का सुरक्षित रहना अन्य जातियों के संघर्ष से उसका परिवर्तित न होसकना इत्यादि हैं। आदि कालमें अन्य जातियों

के मध्य यह भाव उत्पन्न नहीं हुआ, इस कारण उनके मध्य इस प्रकार का जाति भेद भी उत्पन्न नहीं हुआ और इसी कारण गृहस्थ जीवन का भाव भी उनके मध्य हिन्दू जाति के समान दृढ़ प्रकार का पाया नहीं जाता। जिसके न होने से स्त्री पुरुष अपनी इच्छानुसार बहुधा पृथक पृथक होजाते हैं।

वैदिक काल में शूद्रा स्त्रियों के साथ ब्राह्मण वा क्षत्रियों के सम्बन्ध के जो प्रमाण पाये जाते हैं, वे इस बात के प्रमाण नहीं होसकते कि इस समय में भी वर्ण भेद का विचार न किया जावे। क्योंकि प्रथम समय में वर्णभेद दृढ़तम अवस्था में न था। एक वर्ण का मनुष्य उन्नत होकर उच्च वर्ण को प्राप्त कर सकता था। परन्तु इस समय में प्रत्येक जाति सहस्रोंवर्षों से पृथक पृथक है, जिसके जीवन में प्रकृति भेद उत्पन्न हो गया। अर्थात् प्रत्येकजातिके गुण कर्म, स्वभावविशेषप्रकारकेबनगये। इसलिये इस समय में शूद्रों समेत जाति भेद के मिटा देने का अर्थ संसार से आर्य जाति का ही मिटा देना है। हिन्दू जाति के मध्य ईरानी, यूनानी, शक, हूण इत्यादि अन्य जातियां जो मिली मानी जाती हैं। सम्भवतः पञ्जाब तक ही सीमित रहीं तथा उपभेदोंकेकारण सम्मिलित न होसकीं और ब्राह्मणोंके मध्य किञ्चित नहींमिलीं तथा विक्रमादित्यके पश्चात् किसी अन्य जाति का मिश्रित होना इस जाति के साथ पाया नहीं जाता जिनके समय को दो सहस्र वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।

दूसरा दोषारोप हिन्दू जाति के विरुद्ध इस प्रकार का है कि इसने व्रवण वा शूद्र जातियों को अशिक्षित रक्खा। और उन्नत होने न दिया। यह दोषारोप उन ग्रन्थों के आधार पर किया जाता है जो अत्यन्त प्राचीन काल के हैं और सम्भवतः बौद्धकाल में धर्म विरोध के कारण दूषित होगये। क्योंकि बौद्ध धर्म अधिक समय तक इस देश का राजधर्म बना रहा और वैदिक ग्रन्थों के विरुद्ध घृणा का भाव उत्पन्न करके उसके अनुयायों को अपनी ओर आकृष्ट करता रहा। तथा किसी समय में इस देश के मध्य बौद्ध धर्म का अधिक प्रचार हुआ और वैदिक मतके अनुयायी केवल अल्प संख्या में शेष रहगये। उस समय में अपने अपने धर्म का प्रचार करने वा प्रति पक्षी धर्म के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न करने के लिये दोनों ओर से ग्रन्थ रचे गये और अनेक ग्रन्थों के रूप वदले गये जिसके कारण हिन्दू जाति की वैदिक सभ्यता का स्वरूप भी बदल गया। शारदा एक्ट के विरुद्ध इस समय में अल्प व्यस्क विवाह के प्रति धर्म ग्रन्थों के प्रमाण जो प्रस्तुत किये गये, संभवतः इसी प्रकार के हैं जो मुहमडन काल में लिखे गये। यद्यपि यह ग्रन्थ वेदानुकूल न होने के कारण माने नहीं जा सकते और इस काल में संशोधन कियाजाना उनका उचित पाया जाताहै। धर्म ग्रन्थों में शूद्र जातियों के प्रति शिक्षा के विरोध में यदि कठोर दण्ड का विधान होता तो प्राचीन काल वो मध्य काल में आदि

ऋषि वाल्मीक जी [ बहेलिया ] कालीदास जी [ चरवाहे ] कबीरदास (जुलाहे) नामदेव (दर्जी) और मलूकदास, धर्नदास, लालदास, चरणदास इत्यादि अनेक मनुष्य जो शूद्र जाति के थे किस प्रकार से विद्वान वा प्रमुख माने जाते। वास्तव में प्राचीन काल की सामाजिक अवस्था इस प्रकार की न थी जिसके प्रति शिक्षा सम्प्रति काल के समान प्रत्येक मनुष्य के लिये आवश्यक समझी जाती एवं संभव हो सकती। उस समय में शिक्षा इस देश के मध्य अन्य देशों की अपेक्षा यद्यपि अधिक थी परन्तु इस समयके समान विस्तृत न थी, और विशेष प्रकार से केवल ब्राह्मणों के लिये आवश्यक थी। क्योंकि अन्य वर्णों को उन्हीं के द्वारा प्राप्त हो सकती थी। कार्य भेद के अनुसार जातियां मानी जाती थीं। इस कारण जो मनुष्य पठन पाठन का काम करते, पुस्तकें लिखते और वेदादि ग्रन्थों को कण्ठस्थ करते वे ब्राह्मण कहलाते थे। शासन दण्ड के प्रति राजा स्वच्छन्द न था, शासन व्यवस्था भी धर्म के ही आधीन थी। इस कारण राज सभाओं में भी अनेक ब्राह्मणों की नियुक्ति होती थी। जिनके मतानुसारअभियोगोंकानिर्णय कियाजाताथा। इस समय में जिस प्रकार से वकील बैरिस्टर हैं, उस समय में ब्राह्मण ही इस कार्य के अधिकारी माने जाते थे। अन्य जातियां - जो अनेक ग्रन्थों को कण्ठस्थ करने वा पठन पाठन के प्रति अधिक समय नहीं रखती थीं तथा आर्थिक कार्यों में प्रवृत्त रहने के

कारण स्वस्थ चित्त वा शान्ति पूर्वक नहीं रहसकतीथीं इस कार्य्य के प्रति उपयुक्त नहीं समझी जाती थीं। परन्तु जो व्यक्ति अपने पैत्रिक कार्य्य को छोड़कर इस ओर पूर्ण रूप से आकृष्ट होता था वह शिक्षा अवश्य प्राप्त कर सकता था। इसी कारण प्राचीन काल में ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य जातियोंके मनुष्यभी शिक्षित वा प्रसिद्ध हुयेहैं। इसलिये उस समय की शिक्षण नीति जो केवल शूद्र जातियों के ही विरुद्ध मानी जाती है, भ्रम है। वास्तव में शूद्र जातियां अपने स्वभाव से ही जिस प्रकार से इस समय में शिक्षा प्राप्त नहीं करतीं उस समय में और भी कम शिक्षा प्राप्त करतीथीं। तथा अपूर्ण शिक्षा अनर्थ का कारण समझी जाती है और धर्म ग्रन्थों की नीति बुद्धि ग्राह्य होतीहै इस कारण श्रमशील और स्थूल बुद्धि वाले शूद्र वर्ण को धर्म ग्रन्थों के अध्ययन करने का अधिकार सामान्यतः उचित नहीं समझा जाता था। इस विषय का विवरण कुछ पिछले निबन्ध में भी दिया जा चुका इस कारण यहां पर केवल इतनाही लिख जाना आवश्यक है, कि हिन्दुओं की सहस्रों वर्ष की पिछली नीति पर यदि दोषारोप किया जाता है तो मुसलमानों के एक सहस्र वर्ष के शासन काल में उनको शिक्षा सम्बन्धी वा अन्य प्रकारका क्या लाभ प्राप्त हुआ ? और बृटिश जाति के तीनसौ वर्ष के शासन काल में उनकी शिक्षा आदि का प्रबन्ध प्रारम्भ काल से ही क्यों न हो सका ? वास्तव में मनुष्य का प्रत्येक

लाभ उसके विशेष काल पर ही निर्भर है। जिसके प्रति स्वयम् उसकी उत्कट अभिलाषा और समय की अनुकूलता आवश्यक है। बृटिश शासन काल में भी शिक्षा की दृष्टि से हिन्दू और मुसलमान दोनों एक ही स्थान पर क्यों नहीं? और अनेक गृह विहीन जातियां जो असभ्य अवस्था में बस्तियों के निकट घूमा करती हैं इस समय तक उनकी शिक्षा वा सभ्यता का प्रबन्ध क्योंकर न हो सका? सोलहवीं सदी तक योरोप के देशों में भी शिक्षा केवल पादरियों वा धनाढ्य मनुष्यों ही तक सीमित रही। उस समय तक अधिक शिक्षा किसी जातिकेमध्य प्रचलित नहीं हुई। एक सहस्र वर्ष पूर्व देश का शासन यदि मुसलमानों के अधिकार में न जाता तो संभवतः हिन्दू जाति की इतनी अधिक गिरी अवस्था पाई नहीं जाती और उक्त जातियों को इस प्रकार के दोषारोप का अवसर प्राप्त न होता। क्योंकि अन्तिम चार शताब्दियों में योरोपके देश जो कृश्चियन जातियों के अधिकार में रहे वे अधिक उन्नति कर गये। परन्तु एशिया के देश जो मुसलमानों के अधिकार में रहे और भी अधिक अधोगति को प्राप्त हुये। कारण इसका धर्म प्रचार की दृष्टि से शासन किया जाना और शासन अधिकारों का उचित प्रयोग न करना है। यद्यपि यह दोष केवल मुसलमानों ही में नहीं किन्तु सत्तरहवीं सदी तक यही दोष कृश्चियन जातियों में भी विद्यमान रहा और धर्म को शासन से प्रथक करने पर ही

उन्नति उनकी हो सकी। तथा इस समय में प्रत्येक उन्नतिशील जाति आर्थिक लाभ को ही उन्नति का मूल साधन ठहराती और संसारिक लाभों का प्राप्त करना ही धर्म समझती है। योरोप की समस्त जातियां पूर्ण रूप से इसी नीति का पालन करती हैं और एशिया की जातियों में भी यही भाव दिन दिन अधिक होता जाता है। इस कारण इस पुस्तक के मध्य किसी अंश तक धर्म का स्वरूप और सृष्टि की रचना का विवेचन किया जाना भी उचित प्रतीत होता है। जिसके भ्रम से संसार के मध्य अनेक प्रकार के मत मतान्तर उत्पन्न हो गये और जातियों की अशान्ति वा उन्नति के बाधक पाये जाते हैं।

# सृष्टि की रचना का विवेचन।

सृष्टि की उत्पत्ति का विषय मनुष्य के प्रति अनुभव-गम्य नहीं इसलिये जो जो विचार इस समय तक इसके विषय में प्राचीन वा अर्वाचीन वैज्ञानिकों के द्वारा प्रकट हुये वे एकही प्रकार के नहीं हैं। सम्प्रतिकाल में दूरवीक्षण इत्यादि यंत्रों की सहायता से सृष्टि का ज्ञान जो अधिक अंश तक प्राप्त हुआ है इसके द्वारा भी कोई मत इसकी उत्पत्ति के विषय में निश्चित नहीं होता और जड़ वा चैतन्य का रहस्य नहीं खुलता। संसार में अनेक प्रकार के धर्म इसी कारण उत्पन्न हुये हैं। जो सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में प्रथक प्रथक प्रकार का मत रखते और प्रथक प्रथक तर्कों के द्वारा समर्थन उसका करते हैं। इस पुस्तक का विषय भी हिन्दू जाति की धर्म नीति का ही विषय है इसलिये इसके मध्य सृष्टि की उत्पत्ति का विवेचन किया जाना आवश्यक है। और जो कुछ इसके विषय में लिखा जाता है विज्ञान और विचार की दृष्टि से है। किसी मत विशेषकीदृष्टि सेनहीं।

इस अपार सृष्टि के उत्पन्न होने का मूल कारण यही पाया जाता है कि यह अनन्त आकाश अत्यन्त सूक्ष्म प्रकार के परमाणुओं से भरा हुआ है। शून्य माना जाना इसका अपेक्षा-कतहै। अर्थात भौतिक सृष्टि की अपेक्षा आकाश शून्यहै वास्तव

में शून्य नहीं। सम्भवतः इसीकारण आर्य्य वैज्ञानिकोंने आकाश को भी एक प्रकार का तत्व माना है। क्योंकि प्रत्येक वस्तु अधिक से अधिक घनिष्ट होने परभी अपने परमाणुओं के मध्य कुछ न कुछ आकाश वा अन्तर अवश्य रखती है। पूर्ण-रूप में ठोस कोई वस्तु नहीं है। क्योंकि घनिष्टता का कारण सन्ताप की न्यूनता,है इसलिये सृष्टि की कोई वस्तु न पूर्ण-तया सन्ताप रहित है न पूर्ण रूप से घनिष्ट।

उपरोक्त परमाणु जोअनन्तआकाशके मध्य भरेहुयेहैं अनादि हैं। जगत की सामिग्री हैं। इन्हीं के द्वारा सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति हुई है। इनका न्यूनाधिक होना वा नष्ट हो जाना किसी प्रकार सम्भव नहीं। यह परमाणु कब और किस प्रकार से उत्पन्न हुये? यह प्रश्न किया जाना भी व्यर्थ है। क्योंकि यदि इनके उत्पन्न होनेकाकोईकारणमानेतोउसकारणके प्रति भी यही प्रश्न प्रस्तुत किया जासकता है और प्रत्यक्ष को छोड़कर अनुमान पर निर्भर किया जाना आवश्यक होता है। जो न्याय की दृष्टि से माना नहीं जासकता। क्योंकि अनुमान की सीमा अनुभव की सीमा से बाहर नहीं और अनुभव की सीमा से बाहर किसी वस्तु का स्वीकार करना कल्पना है अनुमान नहीं।

उपरोक्त परमाणुओं के मध्य अनेक प्रकार के गुण हैं क्योंकि परमाणुकोई गुणरहितनहीं और गुण कोई द्रव्यसे पृथक नहीं। इसलिये रूप, रङ्ग, रस, शब्द, गन्ध, उष्णता, अस्थिरता,

( कम्पन ), गुरुता ( भारीपन ), विद्युत ( शक्ति और प्रकाश ) आवर्तन ( वर्तुलाकार घूमना ), आकर्षण ( स्वयम् खिचकर संघटित होना ) विकर्षण ( स्वयम् प्रथक प्रथक हो जाना ), रसायन (दो वा अधिक वस्तुओंसे मिलकर एक नवीन वस्तु बन जाना), चेतना (अनुभव वा ज्ञान प्राप्त करना) इत्यादि जो जो गुण सृष्टि के मध्य पाये जाते हैं वे सब प्रकृति के ही गुण हैं। इन्ही गुणों के कारण प्रकृति के द्वारा अखिल जगत् की उत्पत्ति हुई है। और प्रकृति से प्रथक कोई स्थान वा वस्तु नहीं है। सृष्टि की उत्पत्ति और विनाश का जो क्रम हमारी भूमि पर पाया जाता है यही क्रम सपूर्ण जगत् में व्यापक है। अर्थात भूमि पर जिस प्रकार से जीव वा वनस्पति उत्पन्न होते और कुछ समय तक रहकर परमाणुओं के रूप में पुनः परिणत होजाते हैं। इसी प्रकार से आकाश के मध्य भी अगणित पिण्ड और सूर्य मण्डल उत्पन्न हुये हैं। कुछ उत्पन्न हो रहेहैं। कुछ अधिक आयु के कारण क्रम क्रम से क्षीण होते जा रहे हैं। जिस प्रकार वायु के संचालन से धूल के हलके भारी कण प्रथक प्रथक हो जाते हैं। उसी प्रकार से कम्पन, आकर्षण, वा रसायन इत्यादि गुणों के कारण प्रकृति के परमाणु भी संघटित होकर सूर्य, गृह, उपगृह, इत्यादि के रूपमें तथा गृहों के मध्य वायु, जल और भूमि के रूप में परिवर्तित हुये। अर्थात् कम्पन, रसायन वा आकर्षण इत्यादि गुणों के कारण

प्रकृति के मध्य प्रथम अत्यन्त सूक्ष्म और सन्तप्त परमाणु उत्पन्न वा एकत्रित होकर सूर्य बने और शेष परमाणुओं के संघटित हो जाने से क्रमानुसार गृह उपग्रह, इत्यादि की सृष्टि हुई। इसी प्रकारसे गृहों के मध्य क्रम क्रम से वायु, जल और भूमि की सृष्टि हुई है। तथा इस समयमें भी स्थूल होकर क्रम क्रम से वायु मण्डल जल के और जल भूमि के रूप में परिवर्तित होता जा रहा है। परमाणुओं के द्वारा प्रत्येक पिण्ड क्रम क्रम से वायु के, जल के, भूमि के, रूप में परिवर्तित होकर लक्षों वर्ष में बनता और इसी प्रकार लक्षों वा करोड़ों वर्ष में क्षीण भी होता है इस कारण अपने अल्प-काल में उनका बनना वा बिगड़ना हमको ज्ञात नहीं हो सकता। यद्यपि बड़ी बड़ीं दुरबीनों के द्वारा पिण्डों की विविध अवस्थाओं पर ध्यान देने से उनकी अवस्थाओंका अन्तर ज्ञातहोता है। अर्थात जो पिण्ड बन रहे हैं वे कुहरे के समान ज्ञात होते हैं। जो बन चुके हैं उनमें भूमि की अपेक्षा जल का अंश अधिक पाया जाता है और जो अधिक समयके हो गये हैं उनमें भूमि का अंश अधिक और जल का अंश न्यून हो जाता है। अन्त में पूर्ण आयु के पश्चात् क्रम क्रम से आयतन घटना उनका अरम्भ होता है। जिस प्रकार से असंख्य वृक्ष वा जीवादि अपने शरीर की सामग्री को भूमि से प्राप्त करते अन्त में क्षीण होकर उसी को प्रदान कर देते हैं। उसी प्रकार आकाश के मध्य प्रकृति के

द्वारा असंख्य पिण्ड उत्पन्न होते अन्त में क्षीण होकर परमाणु रूप में पुनः परिणित हो जाते हैं। यही क्रम अनन्त काल से चला आता है। इस लिये प्रारम्भ काल इसका माना नहीं जा सकता।

उपरोक्त कथनानुसार जिस प्रकार क्रम क्रम से लक्षों वर्ष में गृह, उपगृह, इत्यादि पूर्ण अवस्था को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार से उनपर अनेक प्रकारकी सृष्टि भी क्रम क्रम से लक्षों वर्ष में उत्पन्न होती है। तथा गृहों की अवस्था परिवर्तन के साथ सृष्टि की अवस्था भी परिवर्तित हो जाती है। अर्थात् पृथ्वी पर इस समय में जिस जिस प्रकार के जीव वा वनस्पति पाये जाते हैं, इससे पूर्व अनेक प्रकार के नष्ट हो चुके और अधिक समय पश्चात् इस प्रकार के भी शेष न रहें गे। एक ही समय में सम्पूर्ण सृष्टि का उत्पन्न हो जाना वा नष्ट हो जाना संभव नहीं जिस प्रकार से हमारे सन्मुख अनेक वृक्ष वा जीव संसार में उत्पन्न होते, बढ़ते और कुछ समय पश्चात् क्षीण वा नष्ट हो जाते हैं इसी प्रकारसे सहस्रों वा लक्षों वर्ष के पश्चात् पिण्डों की अवस्था भी बदलजाती है। अर्थात् जल के स्थान में स्थल और स्थल के स्थान में समुद्र वा पर्वत बनजाते हैं तथा प्रथम समय के वृक्ष वा जीव न रहकर अन्य अन्य प्रकार के उत्पन्न होजाते हैं। इस समय में हमको ऊंचे पर्वतों पर समुद्र के जीवों की हड्डियां और भूमि के भीतर से पत्थर का कोयला

वा मिट्टी का तेल जो प्राप्त होता है कारण इसका यही है कि भूमि के कुछ अंश ऊपर उठकर पर्वत बनगये। कुछ नीचे धसगये और सहस्रों वा लक्षों वर्ष तक भूमि के नीचे दवे रहने से बड़े बड़े वृक्ष वा वृहताकार जीव कोयला वा तेल के रूपमें परिणित होगये। अर्थात् भूमि के उदर में लक्षों वर्ष के पश्चात् जिस प्रकार से अनेक प्रकार के पत्थर बने उसी प्रकार बड़े बड़े वृक्षों की मिट्टी से कोयले के नर्म पत्थर बनगये हैं।

इस पृथ्वी की उत्पत्ति का समय ज्योतिष विद्या विशारद दस करोड़ वर्ष बतलाते, भूगर्भ विद्या विशारद सत्तर करोड़ वर्ष बतलाते और वैदिक मतवाले एक अरब पचहत्तरकरोड़ वर्ष बतलाते हैं। तथा वैदिक मत वाले मनुष्य की उत्पत्ति का समयभी इतनाही मानते हैं परन्तु इतिहासिक खोज के द्वारा मनुष्य की उत्पत्ति का समय दससहस्र वर्ष से अधिक पाया नहीं जाता। अर्थात् मनुष्य की सभ्यता जो क्रम क्रम से उन्नत हुई है उसका समय दससहस्र वर्ष से अधिक निश्चित नहीं होता।

आकाश जिस प्रकार के परमाणुओं से भरा हुआ है वे अत्यन्त सूक्ष्म, संतप्त, प्रकाशमान, अस्थिर, और अनेक प्रकार के गुण वा रंग रखते हैं। तथा अखिल जगत् के उत्पन्न होने के मूल कारण हैं। आकाश जिसको हम शून्य बतलाते हैं असंख्य बड़े बड़े पिण्डों के उत्पन्न होने की यही भूमि है और

इसके मध्य जो अत्यन्त सूक्ष्म द्रव्य भरा हुआ है उससे पृथक संसार में कोई अन्य वस्तु नहीं। इसी द्रव्य के मध्य अनेक गुणों के समान चैतन्यता भी एक प्रकार का गुण है। जो स्थूल शरीर पाकर उसके अवयव अनुसार प्रकट होता है। जीवन शक्ति केवल चर जीवों में ही नहीं किन्तु उद्भिज वा खनिज पदार्थों में भी है जिस के कारण वे अपनी अनुकूल परस्थित में उत्पन्न होते तथा बढ़ते हैं और खाद्य वस्तुओं में सम्मिलित रहकर हमारे शरीर को भी जीवित रखते हैं। प्रत्येक वस्तु की रचना एक ही प्रकार की नहीं। इसी कारण प्रत्येक वस्तु में चैतन्यता का गुण भी समान रूप में पाया नहीं जाता। अमेरिका इत्यादि देशों में कुछ वृक्षों के मध्य जीवन शक्ति इतनी अधिक पाई जाती है, कि वे निकट में आने वाले छोटे जीवों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते और उनके रससे अपने शरीर का पोषण करते हैं। इसी प्रकार से पारा वा चुम्बक इत्यादि खनिज वस्तुयें भी अद्भुत प्रकार का गुण रखती हैं। स्पंज, उद्भिज वस्तुके समान प्रतीत होता है जो एक प्रकार का जीव है और मूंगा खनिज वस्तु के समान ज्ञात होता है जो एक प्रकार का वृक्ष है। अर्थात् रजकण से लेकर मनुष्य के शरीर तक जीवन बल क्रमानुसार विकसित अवस्था में है। खनिज उद्भिज और चैतन्य प्राणियोंके मध्य जीवन बलका कोई विशेष अन्तर पाया नहीं जाता। एक प्रकार की सृष्टि का अन्तिम जीवनबल दूसरे

प्रकार की सृष्टि के आदि बल के निकटतर है। कठिन भूमि से ही उद्भिजों का पोषण होता और उद्भिजों से चर जीवों का। खाद्य वस्तुओं में खनिज पदार्थों के ही अंश पायेजाते हैं जिन पर हमारा जीवन निर्भर है। अर्थात् हमारे शरीर में आक्सिजन, हैडरोजन, कार्बन, नैटरोजन, क्लोरियन, फ्लोरियन, स्लेफिन, गन्धक, फासफोरस केल्सियम, पोटाशियम, सोडियम, मेगेनेशियम, मेगेनेज, लोहा, तांबा, यह सोलहप्रकार के तत्व जो पायेजाते हैं इन में अन्तिम सात खनिज अर्थात् दृढ़ प्रकार के हैं जो आहार के द्वारा हमको प्राप्त होते हैं। यदि जीवन शक्ति इन खाद्य वस्तुओं से प्रथक होती तो बिना आहार के भी हमारा जीवित बना रहना संभव होता। हमारे शरीर में ताप और जीवन शक्ति जो विद्यमान रहती, वह सूर्य्य की किरणों और खाद्य वस्तुओं द्वारा उत्पन्न होती है। शरीर के मध्य जिस जिस प्रकार के रसों वा यन्त्रों की सहायता से रक्त बनता या स्वच्छ होकर शरीर में भ्रमण करताहै। वे अत्यन्त शूक्ष्म रूप में पिता के वीर्य्य सेही हमको प्राप्त होते हैं और मनुष्य के वीर्य्य में आदि काल से ही चले आते हैं। रसायनिक संयोग द्वारा सृष्टि के असंख्य वीर्य्य भूमि की उपयुक्त अवस्था में इसी प्रकार से उत्पन्न हुये हैं। जिस प्रकार से केवल युवा अवस्था में ही जीवों के शरीर से वीर्य्य उत्पन्न होते हैं। वास्तव में जीव कोई वस्तु विशेष अथवा भौतिक द्रव्य नहीं जो किसी

प्रकार के अनुभव द्वारा जाना जा सके वा देखा जा सके। वह एक प्रकार का गुण है जो सम्पूर्ण शरीर में कण कण के मध्य व्यापक रहता है और शरीर की सृष्टि के अनुसार प्रकट होता है। अर्थात् शरीर की सृष्टि जिस प्रकार की होती है उसी प्रकार का जीवन बल उसके द्वारा प्रकट होता है। सृष्टि के उत्पत्ति काल में आकर्षण, रसायन, इत्यादि अनेक गुणों के कारण जो प्रकृति के मध्य विद्यमान हैं एक ही प्रकार के परमाणु मिलकर तत्व बने और रसायनिक संयोग द्वारा अनेक प्रकार के परमाणु मिलकर विविध प्रकार की सृष्टि बन गये। प्रत्येक प्रकार की सृष्टि प्रथम अत्यन्त सूक्ष्म बीर्य्यों के रूप में उत्पन्न हुई तत्पश्चात् भूमि के मध्य बोये हुये बीर्य्यों के समान सृष्टि के बीर्य्य अपने अनुकूल परमाणुओं को आकृष्ट करके बृहताकार बन गये। जिस शक्ति के द्वारा बीर्य्य खाद्य कणों को अपनी ओर आकृष्ट करता है इसी का नाम जीवन शक्ति है। और बीर्य्य अपने मध्य अत्यन्त सूक्ष्म रूपमे जिस प्रकार की आकृति रखता है उसी प्रकार का शरीर उत्पन्न करता है। (प्रश्न) सृष्टि अद्भुत प्रकार की है इसके मध्य अत्यन्त सूक्ष्म बीर्य्य और बीर्य्यों के मध्य इस प्रकार की विलक्षण आकृति स्वयम् किस प्रकार से उत्पन्न होगई ( उत्तर ) प्रथम समय में अधिक सन्ताप के कारण भूमि कण जब संतप्त, तरल, वा अधिक अस्थिर अवस्था में थे और क्रम क्रम से संघठित होते जा रहे थे उस

सम. में असंख्य प्रकार के रसायनिक संयोग उत्पन्न हुये। उन में से कुछ उद्भिज वा खनिज पदार्थों के रूप में साधारण प्रकार की सृष्टि के वीर्य्य बने और कुछ चर जीवों के रूप में विलक्षण प्रकार की सृष्टि बन गये। संसार चाहे किसी प्रकारका उत्पन्न होता आश्चर्य की दृष्टि से अवश्य देखा जाता। क्योंकि आश्चर्य का कारण मनुष्य की अनभिज्ञता है। जिस के कारण वह स्वयम् अपनी जाति के रचे पदार्थों को भी आश्चर्य की दृष्टि से देखता है। जिस प्रकार स्त्री के उदर से केवल युवा अवस्था में ही सन्तानों की उत्पत्ति होती है वृद्ध काल में नहीं होती इसी प्रकार भूमि के उदर से भी विशेष काल में ही जल थल और बड़े बड़े वृक्षों वा जीवों की उत्पत्ति हुई है। जो इस समय में नहीं होती। और जिन जिन परमाणुओं के संयोग से वृक्षो वा जीवों के वीर्य्य उत्पन्न हुये वे परमाणु अब स्थूल सृष्टि में परिणित होगये। यदि हैं तो उनका दृष्टि में लाना वा अनुपात से लेकर सृष्टि की रचना करना मनुष्य के अधिकार में नहीं है। क्योंकि मनुष्य की शक्ति इतनी अधिक नहीं कि अत्यन्त शूक्ष्म परमाणुओं को ज्ञात कर सके। वा इस प्रकार के यन्त्र निर्माण कर सके, जिन के द्वारा वृक्षों वा जीवों के शरीर उत्पन्न हो सकें। अथवा इस प्रकार का सन्ताप उत्पन्न कर सके जैसा कि भूमि के उदर में उस समय विद्यमान था जिस समय सृष्टि के वीर्य्य उत्पन्न हुये।

आदि काल में सब प्रकार के जीवों तथा वृक्षों के वीर्य्य स्वयम् भूमि से ही उत्पन्न हुए हैं। परन्तु भूमि के कठिन होजाने से अब बड़े बड़े जीवों वा वृक्षों के वीर्य्य भूमि के उदर से स्वयम् उत्पन्न नहीं होते । केवल छोटे प्रकार के जीव और बनस्पति उत्पन्न होते जिन के अत्यन्त शूक्ष्म वीर्य्य किञ्चित् धूल में ही सम्मिलितरहतेहैं । अथवा अत्यन्त शूक्ष्मपरमाणु जो प्रत्येक वस्तु से प्रति दिन पृथक होते हैं अनुकूल परस्थिति में अधिक छोटे जीव उनके द्वारा भी उत्पन्न हो जाते हैं । इस कारण कीचड़ और सड़ी गली वस्तुओं के मध्य तथा फल तरकारियों वा जीवों के शरीर में भीतर और बाहर अनेक प्रकार के क्षुद्र जीवों का उत्पन्न होना हम प्रतिदिन देखते हैं और विशेष प्रकार की वस्तुओं से विशेष प्रकार के जीवों का उत्पन्न होना भी अनुभव करते हैं । इस लिये जीव कोई स्थूल वा स्थानिक वस्तु नहीं, किन्तु प्रकृति का एक व्यापक गुण है। जो अन्य गुणों के समान अपनी अनुकूल परस्थिति को पाकर प्रकट होता है । जिस प्रकार से अग्नि यद्यपि कण कण में व्यापक है परन्तु घर्षण वा रसायनिक संयोग द्वारा प्रकट होतीहै । स्वयम् नहीं होती । जीवभी इसी प्रकार से अनेक द्रव्यों के रसायनिक संयोग, परमित ताप और अनुकूल समय वा परस्थितके प्राप्त होनेपर प्रकट होसकता है अन्यथा नहीं ।

सृष्टिके विरुद्ध संसारमें विध्वंसक शक्तिभी विद्यमान है।

जो प्रत्येक वस्तु को विध्वस्त करके उसको पुनः परमाणु रूप में परिगित करदेती है और जिस प्रकार से प्रत्येक जड़ वा चैतन्य शरीर प्रतिदिन भूमि से अपने अनुकूल परमाणुओं को आकृष्ट करके जीवित रहता है, उसी प्रकार से असंख्य परमाणु नष्ट होकर उसके शरीर से प्रतिदिन प्रथकभी होजाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक चर वा अचर शरीर के मध्य उसके नष्ट वा पुष्ट होनेवाली दोनों क्रियायें निरन्तर विद्यमान रहती हैं। जिस समय तक शरीर के मध्य जीवन बल अधिक रहताहै वह शरीर अपने जीवन के अर्थ क्षय की अपेक्षा प्राप्ति अधिक करता है। तथा बढ़ता है। परन्तु शक्ति जब शरीर की न्यून होजाती है तब प्राप्ति की अपेक्षा क्षय अधिक होता और क्रम क्रम से घटना उसका प्रारम्भ होजाता है। किसी विशेष आघात के बिना किसी शरीर का एकदम नष्ट होजाना सम्भव नहीं। वृक्षादि जड़ प्राणियों की अपेक्षा मनुष्यादि प्राणियों का जीवन अत्यन्त निर्बल यंत्रों की सहायता पर निर्भरहै। जिनमेंसे किसी एक यंत्र केभी निशक्ति होजानेपर सम्पूर्ण शरीरकाकार्य शिथिल वा स्थगित होजाता है। (प्रश्न) जीवन बल जब तत्वों वा कणों के मध्य पाया नहीं जाता तब शरीर के मध्य किस प्रकार उत्पन्न होजाता है। (उत्तर) यह बात पिछले पृष्ठोंपर लिखचुके हैं कि जीवन बल अनुकूल परस्थितको पाकर रसायिनिक संयोग द्वारा प्रकट होता है। जिस प्रकार से रुई,

कोयला, शोरा, गन्धक इत्यादि प्रथक प्रथक साधारण वस्तु के समान रहते परन्तु मिलकर बारूद बनजाते जो पत्थर को भी तोड़देतेहैं। इसलिये भूमिके मध्य जो अनेक प्रकार के तत्वकण हैं अनुपात के साथ इनहीं के मिलने से अनेक प्रकार के जीव और वनस्पति उत्पन्न हुये। तथा जीवों के मध्य इसी कारण अनेक प्रकार के तत्व पायेजाते हैं कि वे तत्व भूमि के मध्य विद्यमान हैं जिनके द्वारा उत्पत्ति उनकी हुई। (प्रश्न) शरीर उत्पन्न होकर पुनः नष्ट क्यों होजाता है सदैव स्थिर क्यों नहीं बना रहता। (उत्तर) जो कार्य विशेष बल की सहायता से होता है सदैव स्थिर नहीं रहसकता जिस प्रकार से आकाश की ओर फेंका गेंद कुछ ऊपर चढ़कर पुनः नीचे आता है और तोप का चलाया गोला कुछ दूर जाकर ठहरजाताहै उसी प्रकार से रसायनिक बल द्वारा उत्पन्न हुआ शरीर भी कुछ समय तक उन्नत होकर जीर्ण अवस्था को प्राप्त होता है। अर्थात् जिन जिन परमाणुओं के संयोग से वह बनता है उनका प्रथक प्रथक होना प्रारम्भ होजाता है। (प्रश्न) निर्माणकर्ता के विना इस प्रकार की विलक्षण सृष्टि का स्वयम् उत्पन्न हो जाना किस प्रकार संभव है और मनुष्य अपने किये हुये उचित वा अनुचित कार्यों का बदला किस प्रकार पा सकता है (उत्तर) सृष्टिकर्ता प्रकृति ने प्रथक यदि व्यक्ति रूपमें मानाजावे तो उसके प्रतिस्थान वा प्रमाणकी आवश्यकता है

यदि शक्ति रूप में माना जावे तो किसी प्रकार के आधारकी। क्योंकि द्रव्य से प्रथक संसार में किसी प्रकार की शक्ति पाई नहीं जाती। केवल अनुमान के आधार पर प्रकृति से प्रथक ईश्वर की शक्ति को हम स्वीकार नहीं कर सकते। क्योंकि इस प्रकार का अनुभव हम नहीं रखते। इस कारण प्रकृति की अद्भुत शक्तियों को ही ईश्वर मान सकते हैं। जिस के मध्य उत्पादक तथा विध्वंसक दोनों प्रकार की शक्तियां विद्यमान हैं। जो कारण रूप होकर संसार का संचालन कर रही हैं।

शक्तियां जो प्रकृति के मध्य विद्यमान हैं यही दैवी शक्तियां हैं। संसार के सब कार्य इनही के द्वारा सञ्चालित हो रहेहैं। इनके सूक्ष्म गुणों का समझना वा कार्य रूप में लाकर अपने जीवन का लाभ प्राप्त करना ही ईश्वर का मानना है। यही उसकी इच्छा मानी जासकती है। मनुष्य को दुख सुख अपनी प्राप्त हुई जीवन अवस्था, बुद्धि, स्वास्थ्य, स्वभाव, तथा अनेक प्रकार के अनिश्चित कारणों के द्वारा स्वयम् प्राप्त होता है और अधिक अंश तक अनिवार्य है। केवल बुद्धि और परिश्रम यही दो साधन हैं, जिनके द्वारा किञ्चित् सुख पूर्वक मनुष्य जीवन निर्वाह अपना कर सकता है। यद्यपि प्राप्त किया जाना बुद्धि का भी मनुष्य की शक्ति से बाहर है। केवल अधिक शिक्षा और उत्तम सङ्ग के द्वारा मनुष्य को किसी अंश तक

प्राप्ति उसकी होसकती है। मनुष्य ने अपने अनुभव अनुसार सुख शान्ति के प्रति जो उचित प्रकार के नियम निर्दिष्ट किये हैं, उनहीका पालन किया जाना धर्म माना जाता है और धर्म ही सुख का बड़ा साधन समझा जाता है। परन्तु स्वार्थ और अज्ञानता के वशीभूत रहकर मनुष्य अधिक अंश तक पालन उनकानहींकरते। और स्वार्थ सिद्धिके प्रति छल, कपट, अनीति, अन्याय कोही साधन मानतेहैं। इस कारण शासन प्रबन्ध होने पर भी संसार के मध्य शान्ति का वातावर्ण उत्पन्न नहीं होता और उत्तम वा बुद्धिमान मनुष्यों का जीवन भी शान्ति पूर्वक निर्वाह नहीं हो सकता। मनुष्य को किसी अंशतक सुख शान्ति की प्राप्ति इसी प्रकार संभव है कि सदैव उत्तम सङ्गति में रहे। बाल्य काल में आप्त पुरुषों के समीप रहकर स्वास्थ्य और शिक्षाकी प्राप्त करे और युवा अवस्था में यथा संभव सत्य और न्याय का अवलम्बन करना आवश्यक समझे।

संसार के मध्य धर्म का महत्व अधिक है। परन्तु व्योहार उसके अनुसार नहीं होता, तथा धर्म का मुख्य उद्देश्य क्या है इसके विषय में भी मत भेद अधिक पाया जाता है इस कारण अगले प्रकरण में कुछ विवेचन किया जाना उसका आवश्यक है।

# धर्म का उद्देश्य।

मनुष्य के शरीर में जीव क्या वस्तु है और शरीर से प्रथक होकर वह किस अवस्था को प्राप्त होजाता है? तथा उत्पत्ति से ही दुःख वा सुख मनुष्य को किस कारण प्राप्त होता है और सब प्रकार के दुःखों से निवृत्त रह सकना मनुष्य का किस प्रकार सम्भव है? अपने आदि काल से मनुष्य इस प्रश्न पर विचार करता चला आया है और अनेक प्रकार के मत इसके विषय में निर्दिष्ट किये हैं। जो अपनी अपनी सत्यता प्रकट करने के प्रति अन्य मतों का विरोध करते और लड़ झगड़ कर जातियों की अशान्ति के कारण तथा उन्नति के बाधक होते हैं। जातियों की जितनी अधिक हानि इस धर्म विरोध के कारण हुई है। किसी अन्य प्रकार से नहीं हुई और जितना अधिक द्वेप भाव संसार में इसके कारण फैला हुआ है अन्य किसी प्रकार से पाया नहीं जाता। योरोप के देशों में यहूदी ईसाइयों, ईसाई मुसलमानों वा ईसाई ईसाइयों के मध्य उन्नीसवीं शताब्दी तक निरन्तर रक्त पात केवल इसी कारण होता रहा और एशिया के मध्य भी बौद्ध काल से लेकर इस समय तक यही अवस्था स्थिर बनी हुई है। जिसको लगभग पच्चीससौ वर्ष व्यतीत हो चुके। मुहर्रम, रामलीला, ईद, बकरीद, और घन्टा, बाजा इत्यादि के कारण इस देश के मध्य

सरकारी प्रबन्ध रहने पर भी अनेक झगड़े उत्पन्न हो जाते और भीषण अशान्ति का रूप धारण कर लेते हैं। यद्यपि सांसारिक जीवन में विरोध का कारण केवल धर्म नहीं। किन्तु स्त्री, धन, सम्पत्ति, और अहङ्कार भी है। परन्तु धर्म का विरोध अधिक विस्तृत है और ज्ञान विज्ञान के इस विशेष युग में भी, कोई जाति वा कोई व्यक्ति नहीं जिसके हृदय में इसके विरोध का भाव पाया नहीं जाता। कारण जिसका धर्म के उद्देश्य को न समझना और परलोक के विषय में भिन्न भिन्न प्रकारका मत रखना है।

वास्तव में जातियों का यह धार्मिक विरोध अत्यन्त हास्य जनक है क्योंकि अन्य मनुष्य जो अपने विरुद्ध मत रखने के कारण लोक वा परलोक सम्बन्धी लाभों के अधिकारी नहीं उनके शत्रु समझे जाने का प्रयोजन क्या है? जबकि आर्थिक लाभों के प्रति हम परस्पर ईर्षा रखते और अनुचित व्योहार करते हैं तो धार्मिक लाभोंके प्रति हम औरोंको अपना सहयोगी बनाना किस कारण चाहते हैं और न बनने पर हम उनको अपना शत्रु किस कारण समझते, अथवा हृदय में उनके हानि पहुंचाने का भाव किस लिये रखते हैं? क्या जिस मतका हम विरोध करते हैं ईश्वर उसका विरोधी नहीं है? यदि है तो क्या वह दण्ड देने की शक्ति नहीं रखता और मनुष्य जो धर्म के विषय में विरुद्ध वा असत्य मत रखता अथवा ईश्वर

के अस्तित्वको भी स्वीकार नहीं करता क्या कार्य व्योहार में वह सदाचारी वा सत्यनिष्ठ मनुष्य पाया नहीं जाता? और परमार्थवादी धर्मध्वजी मनुष्यों की अपेक्षा वह उत्तम प्रकार का मनुष्य माना नहीं जाता? क्या सदाचारी वा सत्यवादी मनुष्य की अपेक्षा दुराचारी वा हिंसक मनुष्यसे ईश्वर अधिक प्रसन्न रहसकता है? जो वाद विवाद के द्वारा धर्म का महत्व प्रकट करे। अथवा अनेक वार संध्या करके ईश्वर का भक्त बने। परन्तु आर्थिक लाभों के प्रति छल, कपट वा अनीति, अन्यायका व्योहार करना उचित समझे? इसलिये धार्मिक विरोध वास्तव में आवश्यक नहीं और बुद्धिमान मनुष्यों के द्वारा उचित माना नहीं जाता। परन्तु प्रत्येकजातिकेमध्य अधिकमनुष्य इसी प्रकार के हैं जो न केवल अन्य धर्मावलम्बियों सेही विरोध का भाव रखते किन्तु इसी को कारण ठहराकर अपने मध्य भी अनुचित व्योहार करते हैं। इसलिये धर्म के मानेजाने का मुख्य प्रयोजन सत्य और न्याय पूर्वक व्योहार करनाहै। जिसके द्वारा संसार के मध्य शान्ति स्थिर रहसकती और मनुष्य को उत्तम अवस्था प्राप्त होसकती है।

उपरोक्त कथनानुसार सामान्य दृष्टिसे सत्य और न्याय के अनुकूल प्रत्येक कार्य धर्म मानाजासकता है। परन्तु विशेष दृष्टि से धर्म के सब कार्य्य बुद्धि के ही आधीन हैं। साधारण विचार के मनुष्य प्रत्येक अवस्था में न धर्मोचित व्योहार समझ

सकते और न अपनी रुचि वा स्वार्थ के विरुद्ध धर्म का पालन कर सकते हैं। इसी कारण प्रत्येक जाति के मध्य शिक्षित और बुद्धिमान मनुष्यों का आचरण साधारण मनुष्यों की अपेक्षा कुछ अन्य प्रकार का पाया जाता है और किसी किसी समय में धर्म विरुद्ध भी माना जाता है। परन्तु जिस प्रकार से शासन व्यवस्था में मतभेद होने पर प्रधान जजों का निर्णय माननीय होता है उसी प्रकार से धार्मिक कर्तव्यों में भी अनुभवी और बुद्धिमान मनुष्यों का मत स्वीकार किया जाना उचित है।

दूसरा कारण धर्म के पालन न होने का मनुष्यों की स्वाभाविक प्रवृत्ति वा स्वार्थ प्रियता है। और इसी प्रकार के मनुष्य संसार में अधिक पाये जाते हैं, कि नियमित प्रथाओं के अनुसार यद्यपि भजन पूजन करते, वार्तालाप में धर्म का महत्व अधिक जतलाते, और देवालयों के दर्शन वा तीर्थ यात्रा करना आवश्यक समझते हैं। परन्तु कार्य व्योहार अपना सत्य वा न्याय पूर्वक नहीं करते और प्रत्येक उद्यम वा कार्य व्योहार में मिथ्या भाषण वा असत्य व्योहार को ही काम में लाते हैं। अर्थात् उनके धर्म की सीमा केवल प्रचलित प्रथाओं का पालन किया जाना है सत्य भाषण वा सत्य व्योहार करना नहीं।

तीसरे प्रकार के मनुष्यों का धर्म पथ और भी अधिक विरुद्ध है क्योंकि उनका लक्ष्य केवल परलोक ही है, यह लोक

नहीं, वे सांसारिक जीवन के प्रति उदासीन रहते और अत्यन्त संकुचित वा साधु अवस्था में रहकर जीवन अपना निर्वाहकरते हैं। वे दूसरों को भी यही शिक्षा देते हैं कि त्याग बुद्धि रखना और इच्छाओं का दमन करना ही सुख का मूल साधन है, संसार का सुख वैभव प्राप्त करना केवल भ्रम है, मृग तृष्णा है, और दुख का मूल कारण है। भोग के द्वारा अग्नि में घृत के समान इच्छाओं की तृप्ति नहीं होती किन्तु अधिक होती है, जिसके कारण पारलौकिक सुख की अथवा मुक्ति के सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। इस विचार के मनुष्यों का आदर पूर्वी देशों में अधिक होता है। इस कारण संख्या उनकी इन देशों में अधिक पाई जाती है।

उपरोक्त विवेचना यदि भ्रम पूर्ण नहीं है। तो धर्म जिसका महत्व संसारमें अत्यन्त अधिक पाया जाता है, व्योहार रूप में केवल इतना ही प्रमाणित होता है कि कुछ मन्तव्यों वा प्रथाओं का जो जाति के मध्य प्रचलित हैं, उनका पालन किया जाना ही धर्म माना जाता है। परन्तु सदाचारता, सत्यनिष्ठा, न्यायप्रयता, वा उचित व्योहार, जो धर्म के प्रधान लक्षण हैं और सांसारिक जीवन के प्रति नितान्त आवश्यक हैं अधिक अंश तक माने नहीं जाते। तथा संसार के मध्य किसी जाति का व्योहार धर्मानुकूल पाया नहीं जाता अर्थात् धर्म के प्रति केवल जप, तप, भजन. पूजन, व्रत और दान ही पर्याप्त

समझा जाता है। अनीति, अन्याय, अत्याचार और छल, कपट का त्याग करना नहीं। क्योंकि मनुष्य अपनी आवश्यकताओं के वशीभूत है। इसलिये हृदय से वह धर्मकी अपेक्षा अर्थ का आदर अधिक करता है। यद्यपि सभ्य जातियां अपने आर्थिक लाभों के प्रति कपट नीति का व्योहार करतीं परन्तु असभ्य जातियां प्रत्यक्ष रूप में भी असत्य व्योहार करना अनुचित नहीं समझती हैं।

धर्म के प्रधान लक्षण जो सत्य वा न्याय पूर्वक व्योहार करना और संसार की शान्ति वा उन्नति के प्रति प्रयत्न शील रहना है। यह लक्षण एक सहस्र वर्ष पूर्व तक हिन्दू जाति के मध्य अधिक अंश तक विद्यमान रहे। विदेशी यात्री जो इस देश में आये अधिक समय तक भ्रमण करके इस जाति की सत्य निष्ठा और उत्तम व्योहार की प्रशंसा कर गये। तथा इतिहासिक ग्रन्थों के द्वारा भी उत्तम धर्म नीति इसकी प्रकट होती है परन्तु देश पर अन्य जातियों का शासन अधिकार होजाने, जाति भाषा और साहित्य का प्रचार घटजाने, शासक जातियों से दबकर रहने, झूंठ बोलने, खुशामद करने, इत्यादि के कारण हिन्दू जाति के उत्तम गुण नष्ट हो गये और इस समय में देश के मध्य शिक्षा स्वतन्त्रताका प्रचार होने पर भी पुनः उत्पन्न न हो सके। तथा भविष्य में भी अधिक समय तक आशा इसकी पाई नहीं जाती है।

परलोक वाद भी हिन्दू जातिका चर्म सीमातक पहुंचा हुआ है। इसके विषय में इसने जितने अधिक विचार अपने दर्शनों वा उपनिषदों द्वारा प्रकट किये हैं अध्यात्मिक विचारों की अन्तिम सीमा है। जिस से अधिक आगे बढ़ना किसी जाति के प्रति अति कठिन है

पारलौकिक ज्ञान का प्रयोजन संसार के मूल कारण का समझना और माया के प्रलोभन से मुक्त होकर जीवन का अध्यात्मिक सुख प्राप्त करना है। जो अधिक ज्ञान वा अनुभव के प्राप्त होने पर तथा संसारिक जीवन से प्रथक रहने पर केवल कुछ ही मनुष्यों को प्राप्त हो सकता है। इसी कारण हिन्दू जाति के मध्य वर्णाश्रम धर्म के अनुसार अध्यात्मिक सुख की प्राप्ति के लिये आयु का केवल अन्तिम भाग नियत किया गया है।

परलोक सम्बन्धी ज्ञान वा ध्यान के द्वारा मुक्ति का पाना जो निश्चित किया गया है। लौकिक जीवन भी इसका विरोधी नहीं। क्योंकि संसारिक जीवन निष्प्रयोजन नहीं और केवल भजन, पूजन, व्रत और दानही, परलोक सम्बन्धी सुख का साधन नहीं। किन्तु जिस प्रकार से अपने कर्तव्य का पालन करने वाला वीरयोधा रणक्षेत्र में अनेक मनुष्यों का हनन करके भी मुक्ति का भागी होता है। और गृहके मध्य पतिव्रता स्त्री अपने दुश्चरित्र पति की सेवा करके भी मुक्ति की अधिकारिणी

मानी जाती है। उसी प्रकार से धर्म और नीति के अनुसार संसारिक कर्तव्यों का पालन करने वाला प्रत्येक मनुष्य परम पदका अधिकारी हो सकता है। जिस मनुष्य को संसारिक जीवन में यश वा सुख की प्राप्ति नहीं उसको मरण पश्चात् मुक्ति के सुख की आशा करना केवल भ्रम है। निरोत्साही और आलसी मनुष्य जो संसार के मध्य विद्या, बुद्धि, धन और सुखकी प्राप्ति नहीं कर सकता वह मरण पश्चात् और भी अधिक बड़े सुख की प्राप्ति किस प्रकार कर सकता है। यह आश्चर्य जनक शक्तियां मनुष्य को जो प्रकृतिसे प्राप्त हुई हैं, मूल्य इनका यही है कि इनके द्वारा संसारिक लाभों पर ध्यान दे और अपने इस अप्राप्य जीवन को अधिक से अधिक उत्तम बनानेका प्रयत्न करे। प्रकृतिकी उदारता का केवल मनुष्य ही अधिकारी है। इसलिये मनुष्य संसार को यदि वृथा समझे और उदासीन रहकर केवल भजन पूजन करना ही उचित जाने तो इस रहस्य पूर्ण सृष्टिकी रचना ही निष्प्रयोजन होजावे और मनुष्य अन्य जीवों के समान सदा उसी अवस्था में बना रहे जिसमें कि प्रकृति ने उसको प्रथम दिन उत्पन्न किया था। इस जाति के अनेक श्रेष्ठ पुरुष जो ग्रह जीवन से पृथक रहकर वन और पर्वतों पर निवास करते रहे तथा ऋषि मुनि कहलाये, उनकी तपस्या का प्रयोजन केवल भजन पूजन न था। किन्तु एकान्त रहकर मनुष्य हित के प्रति प्रयत्न

करना भी था। इसी कारण वे अधिक प्रसिद्ध हुये हैं और जो जो ग्रन्थ उनके द्वारा रचे गये अथवा आविष्कार हुये वे संसार के मध्य आज पर्यन्त आदर की दृष्टि से देखे जाते तथा अद्वितीय माने जाते हैं।

प्रत्येक कार्य का उद्देश्य किसी प्रकार का संसारिक लाभ होना आवश्यक है। इसलिये जिस कार्य के द्वारा किसी प्रकार का लाभ नहीं अथवा लाभ की अपेक्षा हानि अधिक है वह कार्य वास्तव में धर्म नहीं। जाति के लिये उस पर ध्यान देने की नितान्त आवश्यता है। जाति के विद्वानों का यह परम कर्तव्य है कि वे धर्म के पथ को शुद्ध रक्खें। अर्थात्, जाति के विचारों का संशोधन करते रहें, जिस के कारण जाति का कलेवर भ्रान्ति की मलिनता से निवृत्त बना रहे और स्वच्छ विचारों के द्वारा जाति का पग उन्नति के पथ पर आगे बढ़े।

इस समय हिन्दू जाति के लिये जिस प्रकार की नीति का अवलम्बन किया जाना उचित है, कुछ विचार इसके विषय में अगले निबन्ध द्वारा प्रस्तावित किये जाते हैं। तथा यह भी प्रकट किया जाता है कि महत्व पूर्ण घटनाओं के प्रभाव से जातियों की धर्म नीति का बदल जाना किस प्रकार संभव होता है।

## हिन्दू जाति का भविष्य और उसके प्रति उचित नीति ।

संसार के मध्य जब कभी कोई महत्व पूर्ण घटना घटित होती है प्रत्येक मनुष्य का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट होजाता है। लेखक पुस्तकों वा समाचारपत्रों के द्वारा प्रकाशन उसका करते हैं। कवि लोग कविता द्वारा उसको मनोरञ्जक बनाते हैं। और इतिहास वेत्ता इतिहास का रूप देकर उसको चिरस्थाई बनादेते हैं। इस प्रकार से वह घटना जातियों के हृदय में स्थान पाजाती और विचारों को बदल कर उनके दुख सुख का कारण बनजाती है। जातियां इसी प्रकार से बनती वा बिगड़ती हैं और उनके भाग्य का सूर्य्य इसी प्रकार से उदय वा अस्त होता रहता है। इस बीसवीं शताब्दी के मध्य (सन् १९१४ से १९१८ तक) फ्रांस के युद्ध स्थल में जर्मन महासमर की जो अति भयंकर घटना घटित हुई, उसके फल स्वरूप जातियों के विचारों वा जीवन अवस्थाओं में अन्तर उत्पन्न होगया। तथा मनुष्य संसार का स्वरूप बदलगया। इस युद्ध में दोनों पक्ष के लग भग एक करोड़ मनुष्य प्रत्यक्षरूप में मारेगये (९९९८७६१) और लग भग साठ लक्ष मनुष्यों के शव प्राप्त नहीं हुये (५९८३६००)। लग भग दो करोड़ मनुष्य घायल हुये (२०२९७५५१)। इसके अतिरिक्त लगभग एक करोड़ मनुष्य

अपना गृह छोड़कर भागे। जिनमें अधिकांश कष्ट और भूख के कारण मृत्यु को प्राप्त होगये।( पत्र आज ८ मार्च सन् १९२१ ) इस घटना के विषय में व्यय और हानि की संख्या और भी अधिक आश्चर्यजनक है। अर्थात् दोनों पक्ष के दो खर्ब आठ अर्ब चालीस करोड़ अट्ठावनलाख इक्यावनहजार दोसौ बाईस डालर व्यय हुये हैं ( २०८४०५८५१२२२ )। ( एक डालर = दो रुपया बारहआना के )। यह संख्या इस देश के रुपयों मे लग भग पांच खर्ब साठ अरब के होती है। इस व्यय के अतिरिक्त अर्बों रुपया की इमारतें कारखाने इत्यादि नष्ट हुये। तथा सामानों समेत जहाज जल मग्न होगये। फ्रांस की ओर से बृटन, अमेरिका, रूस, फ्रांस, इटली, बेलजियम, सर्विया, रोमानिया, यूनान, पोर्तगाल, जापान, भारत इत्यादि और जर्मन की ओरसे जर्मन, आस्ट्रिया, हंग्री, टर्की, बलगारिया, इस लड़ाई में सम्मिलित हुये। इनमेंसे लगभग प्रत्येक शक्ति को जन और धन की अधिक हानि सहनी पड़ी। जार रूस की शक्ति पूर्ण रूप से नष्ट होगई। उसी देश के बोलशेविक विरोधी दल द्वारा जार के घराने का एक व्यक्ति भी जीवित नहीं बचा और जर्मन पक्ष में केवल बलगारिया का बादशाह ठहरा शेष सबको अपना सिंहासन त्याग करना पड़ा। जर्मन को लगभग एक अरब दस करोड़ पौन्ड तावान का देना पड़ा, जो क्रम क्रमसे दियाजाना है और चुकना जिसका संभव प्रतीत नहीं होता।

टकी साम्राज्य जो अधिक समय तक क्रिश्चियन जातियों से लड़कर किञ्चित शेष रहगया था वह भी उसके अधिकारसे बाहर होगया तथा स्थान भी उसका कुसतुनतुनिया से हटकर अंगूरा बदल गया। फ्रांस देश की भी प्रत्येक शक्ति ऋणग्रस्त होगई जो अधिक समय तक उऋण न होसकेगी। इस महासमर का फल केवल इतनाही नहीं हुआ। किन्तु इसके कारण जातियों की जीवन अवस्था भी बदलगई। अर्थात् एक सत्तात्मक शासन व्यवस्था नितान्त अनोपयोगी समझी जानेलगी और प्रजा सत्तात्मक शासन व्यवस्था सर्वमान्य हुई। साम्यवाद का प्रादुर्भाव हुआ। जनता निर्भय होकर हुकूमत का विरोध करने लगी। नौकर, मजदूर वेतन वृद्धि के लिये संघटित होकर काम छोड़ने और पूंजीपतियों को हानि पहुंचाने लगे। प्रत्येक देशके मध्य वस्तुओं के भाव अधिक बढ़गये और किसानों के जीवन का मूल्य अधिक समझाजाने लगा। संसार के मध्य स्वार्थ और स्वतन्त्रताका भाव उत्पन्नहुआ। प्रत्येक देश केवल अपनेही देश की उत्पत्ति और बनी वस्तुओं का व्योहार उचित ठहराने लगा। जिसके कारण अन्तरजातीय व्यापार शिथिलहुआ। इससमयमें प्रत्येक जाति वा प्रत्येक व्यक्तिके सन्मुख स्वार्थ और स्वाधीनता का प्रश्न उपस्थित है और संसारके मध्य अशान्ति का वातावर्ण उत्पन्न होगया है।

जिस प्रकार से उक्त घटना के प्रभाव से संसार के मध्य

इस समय में संकट अवस्था उत्पन्न हुई, इसी प्रकार से प्राचीन काल में भी महाभारत घटना के प्रभाव से इस आर्य जाति के जीवनावस्था वा विचारों में अन्तर उत्पन्न होगया। आर्य जाति अपने आदि काल से लेकर महाभारत पर्यन्त वैदिक विचारों के अनुसार क्रम क्रम से उन्नत होती रही और उस अत्यन्त कठिन समय में जबकि संसार के मध्य गमनागमन की सुविधा किसी प्रकार की न थी भूगोल के लगभग प्रत्येकभाग में दूर दूर तक पहुँची। परन्तु महाभरत के पश्चात् जिसके समय को लग भग छत्तीससौ वर्ष व्यतीत हुये आर्य जातिका उन्नति क्रम स्थगित होगया और वैदिक विचारों का प्रभाव शिथिल हुआ। उसी समय से जातिके द्वारा कलयुग वा बुरे समय का प्रारम्भ माना गया और भारतसमर के पश्चात् आर्य जाति के मध्य अर्जुन, युधिष्ठिर वा श्रीकृष्णजी के समान अधिक प्रबल वा प्रतापी पुरुष उत्पन्न नहीं हुये।

लग भग पचीससौ वर्ष व्यतीत हुये कि दूसरी बड़ी घटना इस देश के मध्य बौद्ध धर्म के प्रादुर्भाव की घटित हुई। जिसके कारण आर्य्य जाति का संघटन बल क्षीण होगया और उपयुक्त वैदिक धर्म नीति का स्वरूप भी बदल गया। इस धर्म की शीतल शिक्षा के जल ने जाति के विष को शान्त कर दिया और उत्पन्न होने वाले मत विरोध ने जाति को अधिक निर्बल बना दिया। इसी समय से

पश्चिमी जातियों के आक्रमण प्रारम्भ हुये और सिकन्दर के आक्रमण से लेकर इस समय तक प्रत्येक आक्रमण के द्वारा यह जाति पराजित वा पद दलित होती रही, अन्त में पराधीन हो गई। विशेष कारण इस निर्बलता का जाति के हृदय में उक्त शिक्षा के फल स्वरूप संसारिक जीवन के प्रति उदासीनता है। जो जीवन को केवल मुक्ति का साधन मानने, किसी प्रकार की हिंसा न करने और धनको तुच्छ समझने इत्यादि के भाव में प्रकट हुई। परन्तु जीवन संग्राम में जहां प्रत्येक प्राणी अनेक प्रकार की आवश्यकताओं वा अनेक प्रकार के शत्रुओं से घिरा हुआ है और जीवन की रक्षा के प्रति जहां अधिक से अधिक बल, बुद्धि, साहस, उत्साह, धन, संघटन, इत्यादि की आवश्यकता है इसके स्थान में दया, क्षमा, शान्ति, वैराग्य, की शिक्षा किस प्रकार हितकर हो सकती है। यहां शारीरिक तथा मानसिक रोगों से निवृत्त रहना, प्रबल शत्रुओं के सन्मुख खड़े होकर अपने धन वा जीवन को सुरक्षित रखना और कठिन परिश्रम के द्वारा प्रकृति के अद्भुत गुणों को समझ कर अपनी कठिनाइयोंको दूर करनाही मनुष्यका परमकर्तव्यहै। यहीइसका धर्महै और यही जीवनहै। मनुष्य यदि अपनी शक्तियोंकाउचित प्रयोग न करे और उदासीन रहकर केवल जीवन बिताना ही आवश्यक समझे, तो पशुओं से अधिक उत्तम जीवन इसका माना नहीं जासकता। संसार के मध्य इस समय तक जितना

कृत्रिम चमत्कार पाया जाता है और जितनी अधिक जीवनोपयोगी तथा आश्चर्य जनक वस्तुओं का प्रादुर्भाव हुआ है, मनुष्य की बुद्धि शक्तिका ही प्रतिफल है। भविष्य में भी मनुष्य की कार्य शक्ति ज्यों ज्यों अधिक बढ़ेगी वह अपने जीवन की रक्षा तथा सुविधा के प्रति नये नये आविष्कार करता रहेगा। परन्तु जिन जिन जातियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट होगा। केवल वेही जातियां उन्नत होसकेंगी और अपने जीवन के प्रति सुख पूर्ण अवस्था उत्पन्न करसकेंगी। संसार को दुःखागार समझनेवाली, कठिनाइयों के भय से पुरुषार्थ न करनेवाली, असंघटित अवस्था में रहकर अपने बल को क्षीण रखनेवाली, और आनेवाली आपत्तियों को दूर दृष्टि से न देखने वाली, जातियों का जीवन सदा दुखित वा पराधीनही बना रहेगा।

मनुष्य को अपने जीवन का मूल्य साधारण प्रयत्न व परिश्रम के द्वारा प्राप्त नहीं होसकता। इसके प्रति अत्यन्तकठिन परिश्रम की आवश्यकता है और पुराणों के मध्य कथित हमारे प्राचीन लेखकों का दृष्टान्त इसके विषयमें पूर्णरूप से चरितार्थ होता है। अर्थात् जिस प्रकार से देवता और राक्षसों ने (जाति के ऊंच नीच वा भले बुरे सब प्रकार के मनुष्यों ने) मिलकर सुमेरुपर्वत और शेष नाग की रस्सी द्वारा (अति भयंकर उपायों द्वारा) महासागरों का मथन किया (प्रकृतिका खोज किया) उसके द्वारा अनेक रत्नो की प्राप्ति हुई (सुख मूल साधनों की

प्राप्ति हुई ) इस समय में पश्चिमी जातियों का उदाहरण प्रत्यक्ष रूप में हमारे सन्मुख विद्यमान है। जिनके पुरुषार्थ वा जीवनशैली द्वारा इस युक्ति का समर्थन होता है। वास्तव में इसी का नाम जीवन है। हम अपने कर्तव्यों का पालन न करके संसार को दोष देते, अथवा भाग्य को निर्बल समझते हैं, यह हमारी अज्ञानता है। बड़े बड़े लाभों की प्राप्ति व्यक्तिगत पुरुषार्थ के द्वारा नहीं होसकती, उनके प्रति, संघटन बल की आवश्यकता है और संघटन के प्रति परस्पर उचित व्योहार करने वा सत्यनिष्ठ बनने की। इसी कारण अयार्यजाति ने सत्य व्योहारकोही धर्मका मुख्य अङ्ग माना है जो जाति संघठन के महत्व को नहीं समझती उसकी बुद्धि उस पक्षी के समान संकुचित होती है जो यद्यपि ऊँचे वृक्षपर घोसला बनाता, परन्तु जड़ की जीर्णता का विचार नहीं करता। कि वायुके प्रचण्ड झोंके यह वृक्ष सहन कर सकेगा वा नहीं।

इस समय जातियों की अवस्था विगत काल के समान निर्बल नहीं। तीनसौ वर्ष पूर्व तक प्रत्येक देश अनेक छोटे राज्यों में बटा रहा जो परस्पर लड़ झगड़कर अपने देशकोही हानि पहुँचातारहा। परन्तु इस समयमें वे सबराज्यमिलकर अपने अपनेदेशकी एकवड़ी शक्ति बनगयेहैं। और ज्ञान, विज्ञान, कला कौशल, वा धन व्यापार की, उन्नति के प्रति प्राण पण से लगे हुये हैं। योरोप और अमेरिका के देश अधिक उन्नत हो चुके

हैं। परन्तु जापान के अतिरिक्त एशिया के देशों में इस समय तक यह भाव उत्पन्न नहीं हुआ इसी कारण अवनत अवस्था में पाये जाते हैं।

जातियों की जीवन अवस्था बहुधा उनके विचारों ही के अनुसार होती है और जातियों की उन्नति वा अवनति के मूल कारण विचार ही पाये जाते हैं। इसके प्रति अन्त में उन्नत होने वाली जापान जाति का उदाहरण हमारे सन्मुख विद्यमान है। जो एक शताब्दी पूर्व तक चीनी वा ब्रह्मी आदि अन्य स्वधर्मी जातियों के समान साधारण अवस्था में थी, परन्तु इस समय में अपने शिल्पक वा सैनिक बल द्वारा संसार को चकित कर रही है और पैंतालीस करोड़ चीन निवासियों को अपने आधीन बनाने का साहस प्रकट करती है। इसलिये उत्थान के प्रति जातियों के मध्य मस्तिष्क का विकास वा कार्य शक्ति का उन्नत होना नितान्त आवश्यक है। और यही उनका कर्तव्य अथवा धर्म है।

उन्नत चाहने वाली जाति के मध्य ज्ञान, बुद्धि, साहस, उत्साह, कार्य क्षमता और चतुर्ता, इत्यादि शुभ गुण स्वयम् उत्पन्न हो जाते हैं और भविष्य का स्वरूप दृढ़ता पूर्वक उसके हृदय में जिस प्रकार का उत्पन्न होता है क्रम क्रम से उसी की पूर्ति होने लगती है। इसलिये इस शक्तिहीन पराधीन हिन्दू जाति के लिये आवश्यक है कि भविष्य के प्रति जीवन का

उत्कृष्ट स्वरूप अपने हृदय में धारण करे जो अधिक संघटित और शक्ति सम्पन्न हो। ज्ञान विज्ञान में अग्रगामी हो। कला-कौशल में कुशल हो। और धन ऐश्वर्य से अलंकृत हो। प्रस्तुत अवस्था इसकी अधिक विचारणीय है। इसलिये इसके जीवन में जिन जिन सुधारों की आवश्यकता है अपने मतानुसार इस पुस्तक द्वारा प्रस्तावित किये जाते हैं। जाति के प्रत्येक व्यक्ति के लिये इन पर ध्यान देनेकी नितान्त आवश्यकता है और विचार पूर्वक काम में लाया जाना इनका उचित है।

(१) सम्पूर्ण जाति अपनी रक्षा वा उन्नति के प्रति संघटित होकर रहे और व्योहारिक वा व्यवसायक कार्यों में विश्वस्त तथा सत्यनिष्ट बने। जाति वा धर्म भेद के भ्रम से अपनेको प्रथक प्रथक नसमझे। संस्कृत जातियां मलिन जातियों के यद्यपि निकट न बसें और खान पानादि का सम्बन्ध उनके साथ न रक्खें। परन्तु धार्मिक वा आर्थिक कार्यों में उनके सहयोग को उचित समझें। तथा मन्दिरों में जाने के लिये सप्ताह में एक दिन उनके प्रति विशेष प्रकार से नियत करें और स्वयम् न जावें।

(२) सन्तानों के स्वास्थ्य वा सदाचार पर अधिक ध्यान दियाजावे और उनको श्रम वा युक्ति पूर्वक कार्य करना सिखायाजावे शिक्षापद्धति का संशोधन कियाजावे जिसके द्वारा उक्त प्रकार का लाभ उनको प्राप्त होसके।

( ३ ) शिक्षा का प्रयोजन स्वच्छन्द जीवन, उचित व्योहार, संसारिक ज्ञान, और सैनिक वा औद्योगिक योग्यता का प्राप्त करना मानाजावे। यूनीवर्सिटियों को अधिक सहायता प्रदान कीजावे, कि वे हर प्रकार की उन्नतम शिक्षा जाति के निर्धन बालकों को भी प्रदान करसके।

( ४ ) सैनिकयोग्यता वा चतुर्ता मे यह जाति अन्य जातियो के सन्मुख प्रत्येक समयमें निर्बल सिद्धि हुई है इसलिये भविष्य में सैनिक योग्यता पर अधिक ध्यान दियाजावे। और सैनिक विभाग में अपनी नीतिका छिपाना, छल करना, वा वैज्ञानिक ( Scientific ) अस्त्र शस्त्रोंका प्रयुक्त करना, अनुचित न मानाजावे। निशाना लगाना वा अस्त्र चलाना बालक बालिका दोनोंको सिखाया जावे।

( ५ ) अधिक जेवर बनवाने और तरुण जीवन सम्बन्धी कार्यों मे अधिक व्यय किये जाने की अपेक्षा इस समय में स्वास्थ्य प्रद मकानों के बनाने वा आवश्यक कार्यों मे व्यय किये जाने की अधिक आवश्यकता है और व्यायाम वा श्रम कराया जाना योग्यतानुसार बालक बालिका दोनोंके लिये आवश्यकहै।

( ६ ) देश के मध्य अन्य जातियों का आकर बसना और निर्यात की अपेक्षा आयात का अधिक होना, दोनों कारण दरिद्रता के उत्पादक हैं। इन पर सदैव ध्यान रखना आवश्यक है और देश के मध्य आने वा बसने वाली अन्य

जातियों पर दृष्टि रखना उचित है। ❀ ❀ ❀

(७) इस समय में संसार के मध्य प्रत्येक काम यन्त्रों द्वारा किया जाता है और क्रम क्रम से प्रचार उनका अधिक होताजाता है। इसलिये अन्य देशों की प्रतयोगता में स्वयम् अपनी मशीने त्यार कियाजाना आवश्यक है। शक्ति उत्पादन के सन्मुख यह विचार कियाजानाउचितनहीं किमशीनों के व्योहार सेबेकारी बढ़ेगी वा जन संख्या घटेगी। क्यों कि संसार की गति पर हमारा अधिकार नहीं और संसार के सम्बन्ध से प्रथक रहना भी हमारा सम्भव नहीं। तथा जो बेकारी मशीनों के व्योहार से बढ़ेगी वह उनके बनाने द्वारा अधिक अंशतक दूर होती रहेगी। और जन संख्या जो घटेगी उसके स्थान में जाति की कार्यशक्ति बढ़ेगी जो जन संख्या की अपेक्षा अधिक उपयोगी है।

(८) दान की प्रथा हिन्दू जाति के मध्य अधिक है देश के मध्य अगणित धर्मशालायें विद्यमान, सदावर्त जारी और देवालयों के प्रति अपार सम्पत्ति लगीहुई है, परन्तु जाति की आवश्यकता पर ध्यान देकर न किये जानेसे अधिक लाभ उनके द्वारा प्राप्त नहीं होता। इसलिये बड़े बड़े देवालयों में विद्वान पुजारियों को रखकर उनके द्वारा निर्दिष्ट पुस्तकों के अनुसार इतिहासिक वा धार्मिक ( सदाचार सम्बन्धी ) विचारों का प्रचार कियाजावे। और इसीप्रकार की छोटी पुस्तकें भी

वितरण कीजावे। ❀ ❀ ❀ ❀

( ९ ) नागरी भाषा द्वारा लिखने पढ़ने और हिसाब करने की साधारण शिक्षा प्रत्येक बालक वा बालिका को दिया जाना आवश्यक है और बालिकाओं का पन्द्रहवर्ष तक विवाह न करके वस्त्र सीने, भोजन बनाने, स्वास्थ्य के नियमों को समझने, बच्चों का पालन करने, उनके साधारण रोगों को दूर करसकने, ग्रह को शुद्ध और सुव्यवस्थित रखने, कुपथ्य अहार और जल वायुकी अशुद्धताको समझने वा दूर करसकने इत्यादि की शिक्षाप्रदान कीजावे। इस समय की क्रिश्चियन सभ्यता के प्रवाह में बहकर स्त्रियों को विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा देना, उनको स्वच्छन्द बनाना अथवा तलाक़ देने वा अन्य विवाह करने का अधिकारी समझना, जातीय रक्त वा जातीय सभ्यता के प्रति हानिकारक है। जिसका अर्थ जाति के स्वरूप का बदल देना वा इसकी सभ्यता का लुप्त करदेना है।

( १० ) इस समय में खान पान की सुविधा वा राजनैतिक लाभ की दृष्टि से देशके नवशिक्षित व्यक्तियों, काङ्गरेस आदियों वा असंस्कृत जातियों द्वारा वर्ण व्यवस्था का भङ्ग होना और अछूतो वा मुसलमानों समेत सब जातियों का मिलकर एक जाति बन जाना जो उचित माना जाता है इसमे अधिक समय तक भी सफलता का पाना वा इसके कारण राजनैतिक लाभों का प्राप्त होना निश्चित् नहीं किन्तु इसके

कारण अपनी जाति के मध्य विरोध का उत्पन्न होना वा अनेक सङ्कर जातियों का उत्पन्न हो जाना अधिक संभव है। इसलिये इसके प्रति आन्दोलन करना अथवा कौंसिलों में बिल प्रस्तुत किया जाना उचित नहीं। अछूत जातियां जिस समय उन्नत होंगी उनको सवर्ण जातियों के साथ निकट का सम्बन्ध स्वयम् प्राप्त होगा।

( ११ ) उन्नति के इस महान् युग में जातियों की शक्ति अधिक होगई है और युद्धों की भीषणता अधिक बढ़ गई है जिसके भय से अत्यन्त सबल जातियां भी संघटित होकर रहती हैं। इसलिये हिन्दू जाति के लिये आवश्यक है कि वृटिश जाति के साथ संघटित होकर रहें। वैध उपायों के द्वारा देशाधिकार के प्राप्त करने का प्रयत्न करे और अपने मध्य व्यवसायिक तथा सैनिक बलका बढ़ाना आवश्यक समझें।

( १२ ) देश के मध्य बड़े बड़े संघों का निर्माण करके ज़मीदार कृषिकी उन्नति पर ध्यानदें अर्थात् शिक्षा वा सहायता द्वारा कृषकों को उत्तम प्रकार से काम करने की ओर आकृष्ट करें और (Agriculture) एग्रीकल्चर के अनुभवों को स्थान स्थान वा ग्राम ग्राम में कृषकों के सन्मुख उपस्थित करें। राजा तथा धनवान मनुष्य शिक्षा विभाग को धनकी अधिक सहायता देकर देश के मध्य कलाकौशल की शिक्षा का प्रचार करें और अन्य देशों से यंत्रकारों को बुलाकर देश निवासियों को यंत्रोंका

बनाना सिखावें जिसकी देशमें इससमय अधिक आवश्यकता है।

( १३ ) प्रत्येक वर्ण या जाति के मध्य भी और अनेक भेद पाये जाते हैं यथा संभव उनका दूर किया जाना उचितहै। इस कार्य के प्रति प्रथम कर्तव्य ब्राह्मणों का है तथा जातीय उन्नति के लिये ब्राह्मणों वा क्षत्रियों का संघटित होकर प्रयत्न करना नितान्त आवश्यक है।

( १४ ) हिन्दू जाति के प्रतिनिधि स्वरूप देशके मध्य एक बड़े मंच की स्थापना हो, जिसमें प्रत्येक प्रान्त के राजा रईस और प्रमुख व्यक्ति सम्मिलित रहें। जो हिन्दू जाति की प्रत्येक आवश्यकता पर ध्यानदें। सम्पूर्ण देशमें एक भाषा और एक लिपि का प्रचार किया जावे। जाति के औद्योगिक बलको बढ़ाया जावे और शिक्षा द्वारा उसके अशुद्ध या भ्रम मूलक विचारों का संशोधन कियाजावे। प्रति वर्ष किसी न किसी प्रान्त में बैठक इस मंच की होती रहे। और जाति के उन्नति क्रमपर विचार करना आवश्यक समझाजावे।

( १५ ) मैंने इस पुस्तक के द्वारा हिन्दू जातिकी उत्पत्ति धर्म नीति, ज्ञान, विज्ञान, गौरवता, सभ्यता वा उन्नति अवनति इत्यादि का जो दिग्दर्शन कराया अथवा इसकी प्रस्तुत नीतिका विरोध वा उचित नीति का प्रतिपादन किया अपने मतानुसार

जाति हित की दृष्टि से किया है। परन्तु इस समय देशके मध्य अनेक प्रकार के वाद विवाद प्रचलित हैं, इस कारण योग्य समालोचकों से प्रार्थना है कि वे पुस्तक के जिस जिस अंशका विरोध करें पक्षपात की दृष्टि से न करें। कि जाति के मध्य भ्रम उत्पन्न न होसके। और मुझ को योग्य समालोचकों द्वारा इस पुस्तक के मध्य जिस जिस अंश का लिखाजाना असत्य, अनुचित वा हानिकारक प्रतीत होगा उसको धन्यवाद पूर्वक स्वीकार करूंगा तथा पुस्तक से उनका पृथक करना उचित समझूंगा।

इस पुस्तक को मैं अपने मोहर और हस्ताक्षर द्वारा प्रकाशित करता हूं